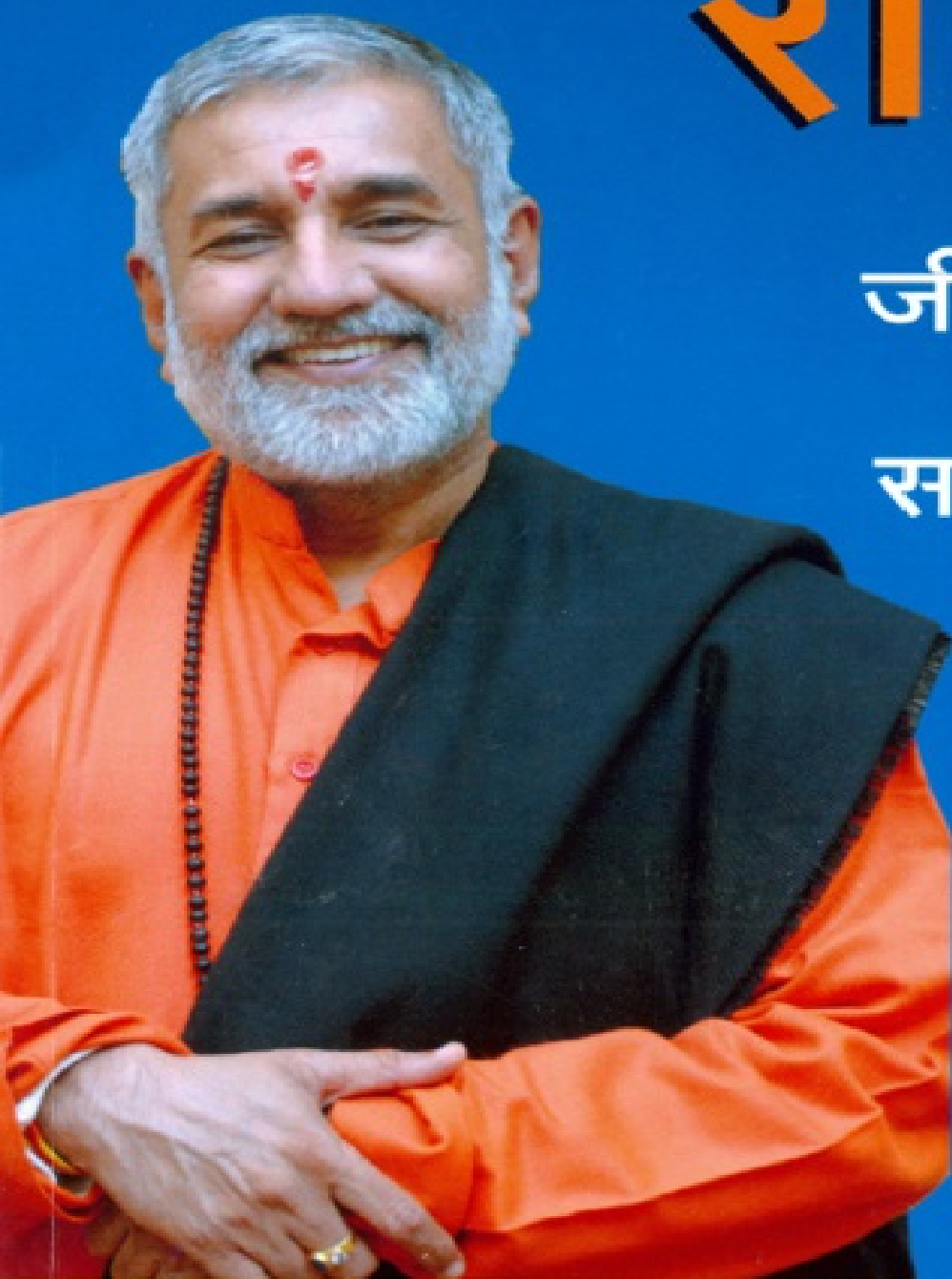


जीने की राह

जीवन प्रबंधन
के
सटीक उपाय



पं. विजयशंकर मेहता

जीने की राह

जीवन प्रबंधन के सटीक उपाय

पं. विजयशंकर मेहता



मंजुल पब्लिशिंग हाउस

First published in India by



Manjul Publishing House

Corporate and Editorial office

- 2nd Floor, Usha Preet Complex, 42 Malviya Nagar, Bhopal 462003 – India

Sales and Marketing office

- 7/32, Ground Floor, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi 110 002

Website: www.manjulindia.com

Distribution Centres

Ahmedabad, Bengaluru, Bhopal, Kolkata, Chennai,
Hyderabad, Mumbai, New Delhi, Pune

Pt. Vijayshanker Mehta asserts the moral right to be
identified as the author of this work

This edition First published in 2014

Third impression 2016

Copyright © 2013 Pt. Vijayshanker Mehta

ISBN 978-81-8322-389-8

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in or introduced into a retrieval system, or transmitted, in any form or by any means (electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise) without the prior written permission of the publisher. Any person who does any unauthorized act in relation to this publisher may be liable to criminal prosecution and civil claims for damages.

लेखक-परिचय

● 20 वर्षों तक रंगकर्म तथा पत्रकारिता के बाद पिछले 10 वर्षों से विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर व्याख्यान का लोकप्रिय सिलसिला।

● जीवन से जोड़ते हुए नई दृष्टि से श्रीमद् भागवत महापुराण कथा, श्रीराम कथा पर देश और दुनिया में व्याख्यान।

● लगभग 70 विषयों पर विचारोत्तेजक व्याख्यान- श्रृंखला।

● देश के ख्यात हिंदी अखबार दैनिक भास्कर के 'जीने की राह' कॉलम के लेखक के रूप में लोकप्रिय।

● युवाओं के बीच 'मेरा प्रबंधक मैं' जैसे विचार के लिए लगातार आमंत्रित।

● 94.3 माय एफ़ एम रेडियो के सभी केन्द्रों से प्रतिदिन सुबह जीवन-प्रबंधन पर विचार व्यक्त करते हुए सुने जा सकते हैं।

● जीवन-प्रबंधन समूह के पांच उद्देश्यों को लेकर हर वर्ग के बीच जा रहे हैं :

हनुमान चालीसा मंत्र बने, हनुमानजी माताओं-बहनों के जीवन में उतरें, हनुमानजी युवाओं के रोल मॉडल बनें, पूजा पाठ से पाखंड हटे, परिवार बचाओ अभियान।

सफल तो होना ही है, पर शांत और प्रसन्न रहें...

एक सुझाव, एक मांग...

ज़रा मुस्कराइए...

प्रबंधन के इस युग में सफल से सफल व्यक्ति भी आंतरिक शक्ति के मामले में असफल हो जाता है। बाहर से प्रसन्न, प्रतिष्ठित और प्रगतिशील दिख रहे चेहरे भीतर से बहुत उदास हैं। जिसको भीतर से स्पर्श करो वही बुझा-बुझा सा, परेशान सा लगाता है। यहां आकर आधुनिक प्रबंधन में भी अध्यात्म की आवश्यकता होती है। अध्यात्म का सीधा सरल अर्थ है आत्म के पास स्थित होना।

मैं देश और दुनिया में अपने प्रवचन और व्याख्यान के लिए घूम रहा हूं। मुझे कई लोग मिलते हैं, अपनी अनेक समस्याओं के साथ। मैं उनके प्रश्न एकत्रित कर लेता हूं और भारत के ख्यात समाचार-पत्र दैनिक भास्कर में प्रकाशित हो रहे 'जीने की राह' कॉलम में उन्हीं प्रश्नों के उत्तर लिख देता हूं। यह पुस्तक उन हजारों उत्तरों में से पंक्तियों को समेटकर तैयार की गई है।

यदि आप गहराई और आत्मीयता से देखेंगे तो हर पृष्ठ एक आईना बन जाएगा, क्योंकि किसी एक का सवाल अनेक लोगों का जवाब बन गया है।

- पं. विजयशंकर मेहता

(जीवन प्रबंधन गुरु)

28, महेश विहार, महामृत्युंजय द्वारा के पास,

इंदौर रोड, उज्जैन (म.प्र.)

मोबाइल नं. 094251-95895

विषय-सूची

- 1 जीवन के उलटे क्रम को सीधा करें
- 2 स्वयं से पिता जैसा, अधीनस्थ से मां जैसा और वरिष्ठ से परमात्मा जैसा व्यवहार करें
- 3 ज़रा सी असावधानी शिखर से शून्य पर पहुंचा सकती है
- 4 दुर्गुणों के हटते ही जीवन में ऊर्जा के झरने फूट पड़ते हैं
- 5 घर और बाहर दोनों के बीच ऐसे साधें संतुलन
- 6 होश के सेतु से सधता है भीतर और बाहर का संतुलन
- 7 विशिष्ट होने की चाह में ज़िंदगी से सहजता खो जाती है
- 8 क्या करूं - क्या न करूं? इससे बचना है तो मानसिक संतुलन साधें
- 9 हमारे भीतर एक परमात्मा है, इसे न भूलें
- 10 देखें, आप सबसे अधिक तनाव में किस समय रहते हैं
- 11 जितना झुकना आएगा, रिश्ते उतना ही ज़्यादा मज़ा देंगे
- 12 24 घंटे में थोड़े समय सोचिए, हम क्यों बदल जाते हैं
- 13 स्वार्थ हमेशा ही गलत नहीं होता, यदि...
- 14 परिश्रम कहीं भीतर के उत्तवेश में न बदल जाए
- 15 वाणी के मुताबिक कर्म नहीं होंगे तो लोग आपकी बात नहीं सुनेंगे
- 16 संसार की यात्रा में जब अंधेरा आए तो यह करें
- 17 शुभ को शीघ्र करें, अशुभ को टालें
- 18 हमें क्या मिला से ज़्यादा सोचें कि हमने क्या दिया
- 19 काम को जीवन से जोड़े
- 20 कम बोलने वाले हमेशा अधिक सुने जाएंगे
- 21 असली लीडर बाहर से प्रखर व मुखर पर भीतर से पूर्ण शांत होता है
- 22 आभार मानना चमत्कारी शक्ति है, तब आपको कई गुना अधिक मिलने लगता है
- 23 आपकी व्यावसायिक प्लानिंग में परिवार का भी हक रखें
- 24 ज़िंदगी में लंबाई और चौड़ाई से अधिक गहराई और ऊँचाई ज़्यादा मायने रखती है
- 25 हाथ में लिए काम को हर हाल में अंजाम तक पहुंचाएं
- 26 जीत का संयोग : शरीर, मन और आत्मा का सही तालमेल
- 27 पूजा-प्रार्थना हमारी उगदत नहीं स्वभाव होना चाहिए
- 28 मेहनत से सब कुछ हासिल किया जा सकता है, लेकिन...
- 29 ऊर्जा एक ही है, निर्माण में लगाएं या बर्बादी में
- 30 गलत तरीके से कमाया हुआ धन हमें गलत रास्तों पर ले जाएगा

- [31 खाली दिमाग भगवान का घर भी हो सकता है](#)
- [32 अपनों से दूरी की तकलीफ़ से ऐसे उबरें](#)
- [33 व्यस्तता में भी जी सकते हैं आध्यात्मिक जीवन](#)
- [34 अमीर होकर भी आदमी इतना दुखी क्यों](#)
- [35 धन-सम्पत्ति के फेर में कहीं अपनों को न खोना पड़े](#)
- [36 काम के नशे में दिल सो न जाए](#)
- [37 ऐसे पेड़ पर फूल और फल भी नहीं लग पाएंगे](#)
- [38 यह न समझे कि प्रेमी लोग झगड़ते नहीं हैं](#)
- [39 किसी को सलाह भी दें तो अहंकार से मुक्त होकर](#)
- [40 तन के रोग धन से, पर मन के रोग भजन से दूर होंगे](#)
- [41 सहानुभूति से अधिक मूल्य करुणा का है](#)
- [42 कब, कितनी भावकुता? यह अध्यात्म से सीखें](#)
- [43 परिश्रम को तनाव और अहंकार से दूषित न करें](#)
- [44 जीवनसाथी सिर्फ एक शरीर ही नहीं घैर भी बहुत कुछ है](#)
- [45 खुद के द्वारा खुद को देखें; समस्या सुलझेगी](#)
- [46 हम सत्य के जितना निकट होंगे ईश्वर के अस्तित्व को उतना ही अधिक जानेंगे](#)
- [47 विश्राम से राहत तो मिल सकती है पर शांति नहीं](#)
- [48 वर्तमान में टिकना समय का सच्चा सम्मान है](#)
- [49 दो बातें: नियमों का पालन करें और परिवर्तन के लिए तैयार रहें](#)
- [50 कोशिश करें, अच्छे लोगों के बीच और बेहतर माहौल में रहें](#)
- [51 अतीत को छोड़े, वर्तमान को पकड़े, और भविष्य से जुड़े](#)
- [52 तेज़ रफ़्तार रखें लेकिन गलत रास्तों के सहारे नहीं](#)
- [53 परमात्मा से जुड़ना है तो जीवन की जड़ों तक जाए](#)
- [54 मन के आकर्षण - बुरी बातें, बुरे लोग, बुरी स्थिति](#)
- [55 24 घंटे में चार बार बड़े कीमती मौके आते हैं](#)
- [56 स्वयं का दुरुपयोग करने से बचें](#)
- [57 कैसे पाएं बाहर की सफलता और भीतर से शांति](#)
- [58 दोष दूसरों में देखें या स्वयं में, उसे दूर करने का प्रयास करें](#)
- [59 केवल अंत ही नहीं मूल और मार्ग भी देखें](#)
- [60 ऐसी प्रार्थना ईश्वर से मीटिंग और अपॉइंटमेंट दोनों है](#)
- [61 बिना बात की उदासी के पीछे हो सकता है प्रारब्ध का हाथ](#)
- [62 अपना रास्ता स्वयं तय करें, सहयोग लें पर निर्भर न बनें](#)
- [63 क्या मौत सबसे अनियोजित एवं अनियंत्रित घटना है!](#)

- 64 आज युवाओं के लिए ये सबसे बढ़िया रोल मॉडल हैं
- 65 ऐसा अनुचित करना ही नहीं सहना भी बुरा है
- 66 भागने के बजाय बहना सीखें, तब ज़िंदगी का अधिक मज़ा आएगा
- 67 कभी-कभी उरपने माता-पिता स्वयं भी बन जाए
- 68 असामान्य सफलताएं पाकर भी सामान्य ही बने रहें
- 69 योग्यता उरौर क्षमता फैलाएंगे नहीं तो वे फ़ेल हो जाएंगी
- 70 बूढ़े और अनुभवी लोग कहीं भी हों बेकार नहीं होंगे
- 71 दिल, दिमाग और देह का सही उपयोग सीखें अध्यात्म से
- 72 आपकी मनःस्थिति भी परिस्थितियों को बनाती और बदलती है
- 73 दुनिया उतनी ही बड़ी नहीं है जितनी आपको दिखाई देती है
- 74 क्यों कहते हैं कि सभी शुद्धियों में धन की शुद्धि सर्वोपरि है
- 75 सुबह-शाम कुछ समय अपने आपको जानने में भी लगाएं

जीवन के उलटे क्रम को सीधा करें

हम किसी भी क्षेत्र के हों, जीवन में तीन स्थितियां होंगी ही। निजी, पारिवारिक और व्यावसायिक जीवन। इस समय इनका क्रम उल्टा बन गया है, पहले आदमी व्यावसायिक जीवन में रहता है, फिर समय बचने पर वह परिवार साधता है और अंत में निजी जीवन पर काम करता है। इसमें उम्र बीत जाती है। कुछ लोगों को तो 50-60 साल में याद आता है कि कुछ भीतर भी साधा जाए, तब तक देर हो जाती है। इस क्रम में सुख, सुविधा, सफलता भले ही मिल जाए पर अशांति बनी रहेगी। चलिए, जीवन का क्रम बदलें। पहले निजी जीवन यानी आध्यात्मिक जीवन-इसमें प्रतिदिन थोड़ा योग-प्राणायाम, ध्यान करें। फिर पारिवारिक जीवन, इसमें जितना ध्यान-प्राणायाम के निकट होंगे उतने हम प्रेम से सराबोर रहेंगे। परिवार प्रेम, धैर्य और समझ से चलता है। अभी ज्यादातर वरिष्ठ और ज़िम्मेदार लोग जब कार्यस्थल पर अपना काम आरंभ करते हैं तो 90 प्रतिशत मौकों पर उनके घर से ही फ़ोन आता है वे खुद फ़ोन कम करते हैं। एक प्रयोग करें, कार्य शुरू करने के पूर्व स्वयं घर फ़ोन लगाकर पूछ लें और बता दें हम काम शुरू कर रहे हैं, सब ठीक है ना? यह रिवर्स रिसपॉन्स धीरे-धीरे एक दिन सकारात्मक परिणाम देगा और फिर व्यावसायिक जीवन साधें। जो लोग इस क्रम से चलेंगे उन्हें अपने व्यावसायिक क्षेत्र में पूरी सफलता तो मिलेगी ही, साथ में शांति भी प्राप्त होगी। चूंकि वे निजी जीवन से परिपक्व बनकर, पारिवारिक जीवन से तृप्त होकर व्यावसायिक क्षेत्र में आ रहे होंगे। इसलिए हर काम में उनकी मस्ती, परिश्रम, ईमानदारी और योग्यता अलग ही होगी। महाभारत युद्ध के आरंभ में अर्जुन ने निराश होकर पलायन की बात कही थी। तब श्रीकृष्ण ने सबसे पहले गीता सुनाई। गीता का संदेश निजी जीवन पर काम करने जैसा है। फिर उन्होंने अर्जुन को परिवार से जोड़ा था। उसके बाद व्यावसायिक जीवन यानी युद्ध में उतारा था और अर्जुन विजय के सूत्रधार बने थे। यदि हर हाल में जितना है तो जीवन का क्रम बदल कर इस प्रकार करके देखिए...।

सार : जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक प्रदर्शन करना आवश्यक है, क्योंकि ये सभी आपस में जुड़े हुए हैं तथा हमारे जीवन को पूर्ण बनाते हैं।

स्वयं से पिता जैसा, अधीनस्थ से मां जैसा और वरिष्ठ से परमात्मा जैसा व्यवहार करें

हम किसी भी क्षेत्र में कार्यरत हों, अपनी निजता को कभी न भूलें। इस बात पर लगातार नज़र रखें कि हमारा निजी जीवन कैसा है। क्योंकि निजी जीवन को दो ही लोग जान पाते हैं, एक तो हम स्वयं और दूसरा हमारा परमात्मा। बाकी तो जीवनभर साथ रहने वाला जीवनसाथी भी नहीं जान पाता कि भीतर क्या चल रहा था। निजी जीवन साधने के लिए प्रतिदिन थोड़ा योग-प्राणायाम करें। 10-15 मिनट इस विषय पर हर 24 घण्टे में ध्यान दें। ध्यान की कुछ सरलतम विधियां हैं, उन्हें अपना लें। कुछ विधियां तो कार्यालय में बैठकर भी की जा सकती हैं, कार में यात्रा करते हुए भी। जितना प्राणायाम-ध्यान के निकट होंगे उतना प्रेम से सराबोर होंगे। पारिवारिक जीवन में बड़ा-तू छोटी, अहंकार, छल से नहीं चला करता। परिवार का सबसे सुंदर आधार है प्रेम। जब भी घर में रहें प्रेमपूर्ण रहें। दुनियादारी के दांव-पेंच जूते-चप्पल की तरह घर के बाहर ही निकाल कर आएं। निजी और पारिवारिक जीवन के सधे हुए क्रम से निकल कर व्यक्ति जब व्यावसायिक जीवन में पहुंचता है तो तीन काम करना स्वतः सीख जाता है। व्यवहार : स्वयं से पिता जैसा, अपने अधीनस्थ से माँ जैसा और अपने वरिष्ठ से परमात्मा जैसा मान-भरोसा, समर्पण रखते हुए व्यवहार करें। पिता में एक दबाव है जो स्वयं पर काम आता है। माँ में सदाशयता, हितकारी वृत्ति होती ही है और परमात्मा के प्रति समर्पण अपने वरिष्ठ या संस्था के प्रति हमारी वफ़ादारी को बनाएगा। वाणी : योग और परिवार से गुज़रा व्यक्ति विनम्र, संतुलित और उद्देश्यपूर्ण ही बोलेंगा। उपहास, व्यंग्यात्मक और अपशब्द, लंबे समय में साथियों को आपसे दूर करेंगे तथा समूची संस्था में उदासी का वातावरण भर देंगे। विचार : ध्यान (मेडिटेशन) मन के नियन्त्रण का नाम है। मन का भोजन विचार है। नियन्त्रित मन विचारों का बोझ कम करेगा, इसका फायदा यह होता है कि आदमी थकता कम है उसका समय प्रबंधन सधता है तथा निर्णयों के प्रति भ्रम दूर हो जाता है। अतः धीरे-धीरे इस जीवनक्रम को अपनाया जाए, जिसका लाभ व्यक्तियों से गुज़रकर पूरे संस्थान को मिलता है।

सार : दैनिक जीवन में परिवार के साथ-साथ कार्यस्थल में भी प्रेमपूर्ण व संतुलित व्यवहार का बहुत महत्त्व है।

ज़रा सी असावधानी शिखर से शून्य पर पहुंचा सकती है

सफलता मिल जाने पर संघर्ष के प्रति विश्राम की मुद्रा आलस्य ही कहलाएगी। आलस्य एक तरह का अपराध है। इसलिए न सिर्फ सतत् सक्रिय रहें बल्कि सतत् सचेत भी रहें। किसी कार्य का दायित्व हमारे ऊपर हो और उसे हम सफलतापूर्वक पूरा कर भी लें, लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होगी। सफलता और दायित्व के प्रति निरन्तर सचेत नहीं रहे तो सफलता कपूर की तरह उड़ जाएगी। कपूर का पदार्थ अदृश्य हो जाता है और सुगंध छोड़ जाता है। आज भी कई लोग उनकी सफलता के खो जाने के बाद उसकी सुगंध में ही जीते हैं। कभी हमारे भी दिन थे, सफलता के ये सुगंधित खयाल ज़िंदगी को कई खतरनाक मोड़ पर ले जाकर पटक देते हैं। अपनी सफलता और दायित्व के प्रति निरन्तर सचेत रहने का अच्छा उदाहरण लक्ष्मण हैं। वनवास जाते समय उन्होंने श्रीराम से कहा था - आपके साथ मैं भी चलूंगा। तब यह सवाल उठा था तुम क्यों चलोगे? इसका उत्तर लक्ष्मण को समझाते हुए उनकी माता सुमित्रा ने दिया था। लक्ष्मण, तुम्हारे ही भाग्य से राम-सीता वनवास जा रहे हैं। तुम उनकी सेवा, सहयोग और सुरक्षा करना। राम, बुराई पर अच्छाई की जीत के बड़े अभियान पर निकले हैं और तुम्हारी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। लक्ष्मण ने चौदह वर्ष के लिए निद्रा त्यागी थी और ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ये दो बातें आज भी हमारे व्यावसायिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए बड़ा इशारा है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है हर कार्य को निष्ठा और परिश्रम से पूरा करना तथा निद्रा त्याग का मतलब सतत् सजग रहना। प्रबंधन में समझ लिया जाए कि ग़लत वक्त पर और ज़्यादा समय के लिए पलक झपका ली तो आंख खुलने पर सारा दृश्य बदला नज़र आएगा, यहीं से शुरू हो जाएगी शिखर से शून्य की यात्रा। इसलिए परिश्रम और सजगता, इन दोनों का मेल जीवन में बनाए रखने के लिए प्राणायाम और ध्यान करते रहना चाहिए। परिश्रम में शरीर साथ देगा और सजगता में मन काम करेगा। चाहे जितने व्यस्त रहें, तन और मन दोनों के लिए संतुलित समय ज़रूर निकालें।

सार : हर परिस्थिति में सजग रहते हुए कार्य करेंगे तो बेहतर प्रबंधन करने में सक्षम बन जाएंगे।

दुर्गुणों के हटते ही जीवन में ऊर्जा के झरने फूट पड़ते हैं

सबकी ऊर्जा समान नहीं होती। हरेक के भीतर उसके सदुपयोग और दुरुपयोग का अलग-अलग स्तर होता है। जो लोग अपनी ऊर्जा का सदुपयोग करना चाहते हैं, उन्हें सबसे ज़्यादा दिक्कत आती है दुर्गुणों से। दुर्गुण तो मौका ही ढूँढते हैं कि किसी की ऊर्जा तक पहुंचे और उसे सही से गलत की ओर मोड़ दें। अच्छे-अच्छे, सफल, सक्षम, समझदार नहीं समझ पाते कि भीतर यह खेल चल रहा है। बड़े-बड़े प्रबंधक, उच्च पद पर बैठे हुए लोग जिनके नियंत्रण में बाहरी दुनिया की एक सफल व्यवस्था होती है, वे भी भीतर के इस संसार को जान नहीं पाते और जानने की कोशिश भी करते हैं तो उलझ जाते हैं। सभी चाहते हैं काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या जैसे दुर्गुण मिटा दिए जाएं। कई बार तो हम संकल्प ले लेते हैं कि आने वाली परिस्थिति में इन दुर्गुणों के आने की संभावना रहेगी और हम हर हालत में इनसे निपट लेंगे, लेकिन जैसे ही घटना घटती है और हम कोई दूसरे ही व्यक्ति हो जाते हैं, सारे संकल्प धरे रह जाते हैं, दुर्गुणों की विजय हो जाती है। दुर्गुण एक तरह का अंधेरा है। हम जितनी ऊर्जा इन्हें मिटाने में लगाएंगे उतने उलझते चले जाएंगे। यह बिल्कुल इस तरह होता है जैसे अंधेरे को तलवार चलाकर काटना या मिटाना। दुनिया में अंधेरा मिटाने का एक ही तरीका है प्रकाश को जगाना। अंधेरा कभी नहीं मिटता। हां, प्रकाश ज़रूर जगाया जा सकता है। और जैसे ही प्रकाश आया, अंधेरे को जाना पड़ता है। प्रकाश का एक दूसरा स्वरूप है परमात्मा, ईश्वरीय शक्ति। आप इसे जो भी रूप दें लेकिन हमसे परे एक परम शक्ति होती ही है जैसे ही उसका आगमन जीवन में होगा, अंधेरा मिटेगा, दुर्गुण हटेंगे और हमारी ऊर्जा इस बात के लिए स्वतंत्र रहेगी कि उसका हम बढ़िया से बढ़िया सदुपयोग कर सकें। फिर यह ऊर्जा हमारे भौतिक जगत की सफलता के लिए भी खूब काम आएगी। परमात्मा को अपने भीतर जगाने के लिए एक सरल तरीका है कि उसके लिए थोड़ा सी जगह खाली कर दें। यह शून्य पैदा होता है मेडिटेशन से। 24 घण्टे में कुछ समय विचार शून्य हो जाएं, फिर देखिए आपकी ऊर्जा बाकी समय क्या कमाल दिखाएगी।

सार : दुर्गुणों को दूर करने में ऊर्जा व्यर्थ गवाँने से बेहतर है सद्गुणों के संचार का संकल्प लेना।

घर और बाहर दोनों के बीच ऐसे साधें संतुलन

व्यावसायिक जीवन में हम लोग अपने रिश्तों को लेकर कभी ज़रूरत से ज़्यादा सावधान रहते हैं और कभी अत्यधिक लापरवाह हो जाते हैं। कई लोग हैं जो अपने कार्यक्षेत्र में, अपने व्यवसाय में, अपने वरिष्ठ और अपने अधीनस्थ से बड़े अच्छे संबंध रखते हैं लेकिन घर-परिवार में सदस्यों से न तो वैसे संबंध रख पाते हैं और न ही माहौल। दफ़्तरों के अच्छे बाँस अपने ही घरों में खराब नेतृत्व देने वाले पाए गए। दरअसल ऐसा इसलिए होता है कि हम हर रिश्ते को बाहर से जीने की कोशिश करते हैं। दुनिया का स्वभाव है कि वो बाहर की ओर ही खिंचती है। इस खिंचाव को थोड़ा रोकें और हर रिश्ते को भीतर जीने का प्रयास करें। भीतर के रिश्ते व्यक्तियों से नहीं चलते, वृत्तियों से चलते हैं। यदि आपने अपनी किसी भी वृत्ति से ठीक संबंध बना लिया तो बाहर व्यक्तियों से भी संबंध मधुर और प्रेमपूर्ण होंगे ही। आज उदाहरण लें क्रोध से हमारे संबंधों का। क्रोध ऐसी वृत्ति है जो आवश्यक बुराई जैसी है। अपने कार्यालय या घर में यदि कोई यह कोशिश करे कि क्रोध शून्य हो जाए तो आप अपना, अपनी व्यवस्था का और अपने परिवार तीनों का नुकसान करेंगे। क्रोध से हमारे रिश्ते मालिक और नौकर की तरह होने चाहिए। इसमें मालिक हमें बनना है और गुलामी क्रोध से करवाना है। अभी अधिकांश मौकों पर उल्टा हो जाता है। क्रोध हमारा मालिक है। जब उसकी इच्छा होती है तो वह आता है और अपनी इच्छा से जाता है। लेकिन यदि हम मालिक होंगे तो हम जब चाहे बुलाएंगे और अपनी ही इच्छा से उसे विदा कर देंगे। जैसे ही क्रोध पर इस तरह का नियंत्रण हुआ हमारी भीतरी बेचैनी, उथल-पुथल खत्म होगी और बाहर हम जिस किसी से भी रिश्ते रखेंगे उसके मायने बदल जाएंगे। आध्यात्मिक जगत में इसे कहते हैं क्रोध का ज्ञान होना। ज्ञान उसे कहा गया है जो स्वयं एक कृत्य बन जाए। जब हमारे भीतर ज्ञान उतरता है तो हमारा करना अपने आप होने लगता है, हमें कुछ करना नहीं पड़ता। एक कुशल सारथी घोड़े को थपथपाता है, पुचकारता है और उस पर सवारी कर लेता है। इसी तरह हमें भी क्रोध पर सवारी करना है, क्रोध हम पर सवार न हो। भीतर का हमारा यह संबंध बाहर के रिश्तों को बहुत ही गरिमामय, प्रेमपूर्ण और सम्मानजनक बना देगा।

सार : अंदरूनी रूप से सजग होकर हर संबंध को यथोचित स्थान दें तथा क्रोधपूर्ण भावों को पहचान कर उनके प्रभाव से बचें।

होश के सेतु से सधता है भीतर और बाहर का संतुलन

जानकारियों का अधिक बोझ भी ज़िंदगी की चाल को लड़खड़ा देता है। हो सकता है ज़्यादा जानकारी तथा, अधिक ज्ञान आपको और अशांत कर दे। भौतिक युग के व्यावसायिक क्षेत्रों में इन बातों का अधिक होना योग्यता और श्रेष्ठता का लक्षण है। इसमें कोई परेशानी की बात नहीं है। परेशानी होगी इनका सही उपयोग नहीं करने से। हर बात की जानकारी होना बाहर की दुनिया में बहुत उपयोगी है, लेकिन अपने भीतर उतरते ही जानकारीयां गायब हो जाएंगी और सिर्फ जानने वाला रह जाएगा। यह जो जानने वाला है, यही हमारा होना है। इसे ही होश में जीना कहते हैं। मुझसे कई लोगों ने कहा कि यह जानकारी तो हमें भी है कि क्रोध हमारा मालिक नहीं गुलाम हो, लेकिन जब क्रोध आता है तो सारी समझ, जानकारी धरी रह जाती है। तमाम कसमें, वादे टूट जाते हैं और आदमी न चाहते हुए भी क्रोध कर जाता है। इस जानकारी को जीवन में सही तरीके से उतारने की क्रिया क्या होगी? तो चलिए, आज थोड़ा भीतर उतरें। जानकारी बाहर परिणाम देगी और यह क्रिया भीतर से पूरी होगी। जब भी क्रोध आए थोड़ा मौन होकर अपने भीतर उतरें। केवल मौन न रह जाएं, वरना भीतर और ज़्यादा उपद्रव हो जाएगा। मौन की सीढ़ियों से अपने भीतर ज़रूर उतरें। वहां आप अपने क्रोध के कारण के दो तल पाएंगे। पहला तल है जहां आप किसी कार्य या उसके परिणाम के प्रति असंतुष्ट, असहमत होंगे, फिर चाहे आप ग़लत हों या सही। यह क्रोध के कारण का पहला तल होगा। इसे सिर्फ भीतर देखना है, यहीं पर रुकना नहीं है। और गहरे उतरें तो दूसरा तल मिलेगा, यह महत्वपूर्ण है। यहां आप अपना 'मैं' पाएंगे। बाहरी क्रोध का दूसरा सिरा हमारे भीतर हमारा 'मैं' होता है। अहंकार से आया क्रोध हमारा मालिक बनेगा ही। सजग रहें, कहीं क्रोध 'मैं' पर चोट लगने से तो नहीं आया? भीतर से इस 'मैं' को गलाने पर आप न तो बड़े व्यवसायी, न महान व्यक्ति, न उच्च प्रबंधक रह जाते हैं और न ही छोटे कर्मचारी या सामान्य जन होते हैं। भीतर सब समान हैं, भेद बाहर है। भीतर का 'मैं' गिरा और क्रोध अहंकार की अंगड़ाई न रहकर अनुशासन की आवश्यकता बन जाएगा। आप क्रोध के साक्षी हो जाएंगे, कर्ता और भोक्ता नहीं। अपने भीतर उतरने के लिए थोड़ा अभ्यास कीजिए और समय दीजिए अपनी निजी ज़िन्दगी को।

सार : ध्यान रखें कि तमाम जानकारीयाँ हमारा भीतरी विकास अवरुद्ध न करें। मौन रहकर अहंकार को देखने पर क्रोध निष्फल हो जाता है।

विशिष्ट होने की चाह में ज़िंदगी से सहजता खो जाती है

दुनियादारी की सफलताएं, उपलब्धियां प्राप्त होने के बाद मनुष्य को विशिष्ट बना देती हैं। इसके बाद कुछ लोग सफल होने की जगह विशिष्ट होने के चक्कर में लग जाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि सफलता परिश्रम का परिणाम है, किए हुए का फल है और विशिष्टता की चाहत अहंकार की शुरूआत है। इस बात को थोड़ा ध्यान रखें कि यह दुनिया परमात्मा ने बनाई है इसलिए यहां सब कुछ विशिष्ट है, अनूठा है, अद्वितीय है और खास है। इसके बीच हम अपने आप को और विशिष्ट बनाएं, यहां से अहंकार का पागलपन शुरू हो जाता है। आज के पेशेवर जीवन में सफलता की कामना और विशिष्ट होने की इच्छा का अंतर समझ में आना चाहिए। जिनके पास ऊँचा पद होता है, अधिक धन होता है, सफलताओं के तमगे होते हैं, उन्हें तो इसे बारीकी से समझना चाहिए। जैसे-जैसे आप अपने करियर में ऊँचे जाएं निश्चित ही आपको अपने कामकाज की सम्पूर्ण जानकारी होगी, बिना उसके कामयाबी मिलती भी नहीं। इसी के साथ एक प्रयोग और करते चलना चाहिए। जब आप अपने काम को पूरा जानने लगते हैं, तब आप लगातार प्रयास करें कि स्वयं को भी जानें। हमें हमारा पता नहीं चल पाता और दुनियाभर की जानकारी प्राप्त कर चुके होते हैं। यहीं से खतरे शुरू हो जाते हैं। फिर हमारी कोशिश होती है कि दुनिया हमें जान ले कि हम कौन हैं और परिश्रम का सारा तानाबाना इसी के आसपास बुना जाता है। हम अपने कर्तव्य को भूलकर इसी में जुट जाते हैं। हमारे लिए कार्य से अधिक अपनी छवि काम करने लगती है। लोग हमें असाधारण मानें, असामान्य समझें, हम अपने व्यक्तित्व को विशेषीकृत बनाने में जुट जाते हैं, हमारा समूचा परिश्रम अहंकार के लेपन से अलग रूप लेने लगता है। इसीलिए थोड़ी देर कोशिश करें, स्वयं को जानने की। शास्त्रों में एक शब्द आया है निर्विशेष, इसका शाब्दिक अर्थ है विशेषण रहित होना, लेकिन गहन अर्थ है कि हमें ऐसा कोई विशेषण नहीं चाहिए जो हमारे विशिष्ट होने की भूख को बढ़ाए। हम सामान्य रहकर भी असामान्य कार्य कर सकते हैं। बस, यहीं से सफलता अशांति नहीं देगी।

सार : विशिष्ट व्यक्ति बनकर भी अहंकार को न जागने दें।
सामान्य बने रहकर सफलता को पचाना सीखें।

क्या करूं - क्या न करूं? इससे बचना है तो मानसिक संतुलन साधें

सफलता भी एक तरह का भोग है। व्यावसायिक जगत में लाभ का लोभ एक सहज आदत बन जाती है और कभी-कभी सफलता के लिए ताकत भी। कई बार यह ग़लत फहमी भी हो जाती है कि यदि हम अध्यात्म से जुड़ गए तो हमारे सांसारिक लक्ष्य कहीं खंडित न हो जाएं। अध्यात्म किसी भी स्थिति में कमजोरी नहीं, ताकत ही है। जब हम अत्यधिक परिश्रम का काम कर रहे होते हैं, खासतौर पर ऐसे किसी अभियान में जहां मस्तिष्क का अधिक उपयोग हो रहा हो तब परेशानियां भी अलग किस्म की होती हैं। आजकल कोई भी काम करो दिमाग लगाना और लड़ाना ही पड़ता है। चलिए, अध्यात्म से मस्तिष्क को जोड़े। सभी जानते हैं हमारे शरीर में परमात्मा ने हर अंग को दो भागों में बांटा है। आख, हाथ, पैर सब दो-दो हैं। ऐसे ही दिमाग भी दो हिस्से में विभाजित है, लेकिन जिस जगह वह मध्य से जुड़ता है उसे आज्ञा चक्र या तीसरी आंख कहा गया है। यह दोनों भौहों के बीच स्थित है। अगर विचार करें तो आधा दिमाग एक निर्णय लेता है तो दूसरा आधा हिस्सा अलग निर्णय ले लेता है और हम अपने ही दिमाग में उलझ जाते हैं। जैसे भोजन के पहले विचार होता है संतुलित भोजन करेंगे। यह मस्तिष्क के एक हिस्से का निर्णय है, लेकिन भोजन करते ही दूसरा मस्तिष्क सारे संकल्प तोड़ देता है, हम अधिक खा लेते हैं फिर पछताते हैं। जब कभी अपने कार्यस्थल पर ऐसी भ्रम की स्थिति हो, मस्तिष्क का अधिक उपयोग किया जाना हो तब कार्य के आरंभ, मध्य और अंत में एक काम करिए। कमर सीधी, आंखें बंद रखकर दोनों भौहों के बीच में भीतर ही भीतर देखना आरंभ करें। यहां मस्तिष्क के दोनों हिस्से जुड़ते हैं। हम जितना इस पर केन्द्रित होंगे, उतना संतुलित दृष्टिकोण हो जाएगा। और यहीं से न तो मानसिक थकान आएगी और न ही निर्णयों में भ्रम होगा। ऐसा करते हुए दोनों हाथ बिना हलचल के रखें, क्योंकि हिलते हुए हाथ मस्तिष्क में भी हलचल करते हैं और रुके हुए हाथ दिमाग को स्थिर रखते हैं। काम की अधिकता हो जाए तो एक प्रयोग और करें, थोड़ी देर घूमें लेकिन हाथ न हिले। पैरों के साथ हाथ आगे पीछे न हों और फिर घूमें। दिमाग हाथ के बिना हिलने-डुलने पर जल्दी शांत होता है। क्योंकि हमारे मस्तिष्क के बायें हिस्से का संबंध दायें हाथ से है और बायें हाथ का संबंध मस्तिष्क के दायें हिस्से से है। कितना ही दिमागी कार्य हो यह आध्यात्मिक क्रिया थकान से बाहर निकाल देगी।

सार : मस्तिष्क की गति को अध्यात्म के प्रभाव के साथ जोड़ने पर शरीर में भी स्वयमेव परिवर्तन आ जाता है।

हमारे भीतर एक परमात्मा है, इसे न भूलें

अधिकार सम्पन्न लोगों से सदैव दूसरों का हित हो जाए, ऐसा नहीं होता। अनुशासन का पालन करवाने और ग़लत करने पर दण्ड देने की प्रक्रिया में दूसरों का अहित भी हो जाता है। हमारी मानवीय भूलें हमें सीधे-सीधे सही मार्ग पर चलते हुए भी हल्का सा झटका दे जाती हैं और हम न चाहते हुए भी कुछ ऐसा कर जाते हैं कि बाद में पछताना पड़ता है। काम के प्रति अत्यधिक व्यावसायिक दृष्टिकोण हमें यह समझाता है कि अपने काम और परिणाम से संबंध रखो, दूसरों का क्या हो रहा है इससे ज़्यादा जुड़ाव न रखें। लम्बे समय तक ऐसी आदत आपको अलग-थलग कर देगी। आप भले ही सफल हो जाएंगे पर यह आदत आपकी सफलता के साथ अशांति को भी चिपका देगी। हमारे भीतर एक परमात्मा है, इसे न भूलें। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि वह सदैव सही ही करता आया है। कुछ न कुछ दोष उसमें भी होगा। जीवन है ही पाप-पुण्य, सही-ग़लत, अच्छाई-बुराई का जोड़। इस संसार में हमेशा से ये दोनों स्थितियाँ और इनसे जुड़े व्यक्ति मौजूद रहे हैं। यदि कंस को हटा दें तो कथा में कृष्ण फिर कितने बच पाएंगे? बिना रावण के राम, और दुर्योधन तथा अर्जुन के प्रसंग अपना प्रभाव ही खो देंगे। सिर्फ़ अच्छाई बच जाए ऐसा दुनिया में मुमकिन नहीं है। सारा मामला संतुलन का है। जीवन जब बुराई की अति पर टिकेगा तो भी ग़लत होगा और अच्छाई की अति भी घातक होगी। पेशेवर लोगों को अपने कामकाजी क्षेत्र में दो आध्यात्मिक शब्दों को ध्यान में रखना चाहिए- संतुलन और प्रतिशत। संतुलन को समझें तथा अच्छाई, बुराई का प्रतिशत अपने भीतर बढ़ाने, घटाने का प्रयास करें। हम पूरी तरह से बुराई पाप, ग़लत काम अपने भीतर या बाहर भी नहीं मिटा सकते। प्रयास करते रहें कि बुराई का प्रतिशत घटता रहे और अच्छाई का बढ़ता रहे। अच्छाई का प्रतिशत बढ़ाने के लिए प्रतिदिन एक छोटा सा अभ्यास करें। जब अच्छे काम कर रहे हों तब भी और हमसे ग़लत हो जाए तब भी, कर्म करने के बाद थोड़ा सा अलग खड़े हो जाएं। जैसे हम भीड़ से दूर खड़े होकर भीड़ को देखते हैं। जैसे अपनी बालकनी में बैठकर आते-जाते लोगों को, वाहनों को देखते हैं बस वैसे ही कर्म करने के बाद स्वयं दूर खड़े होकर परिणाम को देखें। उन विचारों को आता-जाता देखें जिनसे कर्म किया गया। यह एक तरह का आत्म समर्पण है और यहीं से अच्छे कर्म करने का प्रतिशत बढ़ने लगेगा।

सार : प्रत्येक कार्य में संतुलन बनाए रखने से परिणाम भी सर्वोत्तम ही प्राप्त होते हैं। कार्य में लिप्त न होकर मात्र अवलोकन करें।

देखें, आप सबसे अधिक तनाव में किस समय रहते हैं

इस बात पर विचार कीजिएगा कि आप अपने भीतर सबसे अधिक तनाव में किस समय रहते हैं। देखने में आया है कि पेशेवर जीवन में कामयाब लोग सुबह-सुबह अपने घर में बहुत परेशान पाए जाते हैं। सुबह उठने से लेकर अपने काम पर जाने के समय के बीच जो भी घण्टे आपके पास रहते हैं, कहीं आप उस कालखण्ड में दबाव में, चिड़चिड़े, बेचैन और हताश तो नहीं रहते हैं। ज्यादातर लोगों का यह समय घर पर बीत रहा होता है। चूंकि घर से निकल कर दिनभर की योजना इसी समय दिमाग में बन रही होती है तब आदमी भीतर ही भीतर व्यावहारिक समीकरणों में उलझा रहता है और परिवार में होने के कारण उसी समय परिवार के लोग अपने हिस्से की बातें जता रहे होते हैं। इस वक्त आदमी जल्दी में होता है दबाव में रहता है, इसलिए घर वालों से भी उलझ जाता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रातःकाल स्नान करके योग, प्राणायाम, पूजा-पाठ की जो पद्धति हमें सौंपी है, उसके पीछे एक कारण यह भी रहा है कि हम अपने निवास स्थान पर वातावरण में हल्कापन, प्रसन्नता और भक्ति की महक बनाए रखें। घर से निकलने के बाद तो दुनियादारी की उलझनें बढ़ ही जाएंगी। कम से कम घर इस मामले में अछूता रहना चाहिए। ऋषि पद्धति से गुजारे हुए प्रातःकाल के कुछ घण्टे आने वाले दिनभर के लिए गजब की ऊर्जा देंगे। सुबह से उठकर घर में रहते हुए अपनी दिनचर्या में तीन भावनाएं जोड़ लें- पहली यह कि जो भी करेंगे, खिलाड़ी भावना से करेंगे। खेल में खिलाड़ी जानता है कि जीत किसी एक की होगी। प्रयास भी युद्ध स्तर के किए जाते हैं प्रतिद्वंद्विता चरम सीमा पर होती है, लेकिन शत्रुभाव नहीं होता। हम लोग प्रातःकाल अपनी दिनचर्या में पारिवारिक हस्तक्षेप के कारण खुद को घर वालों का और घरवालों को स्वयं का शत्रु बना बैठते हैं, यह न करें। दूसरी बात, भावना यह हो कि हम पूरे परिवार की प्रगति के लिए समर्पित रहेंगे। यह सब मेरा हिस्सा है, मेरे दायित्व बोध की सीमा में आते हैं, अतः इनकी भावनाओं का सम्मान मुझे करना ही है। और तीसरी बात, पूजा करते समय अपने ऊपर श्रद्धा बनाएं और बढ़ाएं। अपने आत्म सम्मान को परमात्मा के अंश के साथ जोड़ें। हम उसकी कृति हैं। इसलिए हमारे भीतर दोष नहीं होना चाहिए। निर्दोष होने का सही स्वरूप है आंतरिक पवित्रता। पूजा हमें पवित्र बनाएगी और यहीं से हमारे भीतर आत्म विश्वास जागेगा। जिसके भीतर आत्मविश्वास होता है वह सुबह से ही खुश, सहज होगा और प्रसन्न रहकर ही घर से प्रस्थान करेगा। फिर देखिए दिनभर, हर पल सफलता हमारे लिए लाल कालीन बिछाकर खड़ी रहेगी।

सार : तनावमुक्त रहकर सुबह की शुरुआत की जाए तो पारिवारिक माहौल भी खुशनुमा बना रहता है।

जितना झुकना आएगा, रिश्ते उतना ही ज़्यादा मज़ा देंगे

बहुत तेज़ गति रखना पड़ती है, तब दुनिया पकड़ में आती है। दुनिया के लिए दौड़ रहे लोगों को रिश्ते बोझ लगने लगते हैं। तब आदमी कहता है रिश्ते निभाने के लिए भी समय नहीं मिलता। परिवार के रिश्ते तो कुदरत के लिए होते हैं आदमी उनसे भी बचने के चक्कर में रहता है। अपने कामकाज में जैसे लक्ष्य-प्राप्ति के लिए हम बहुत सावधान रहते हैं, ऐसे ही रिश्तों के प्रति भी सजग रहें। रिश्तों में झुकना आ जाए तो रिश्ते भी ताकत बन जाते हैं। रिश्तों में सबसे खतरनाक पहलू है अकड़। इसे जितना गलाएंगे रिश्ते उतने निखरेंगे। सोना गलाने पर आभूषण बनता है और अकड़ गलाने पर रिश्ता गहना बन जाता है। हमारी व्यावसायिक यात्रा में रिश्तों के दायित्व बाधा भी बन जाते हैं। यह अर्धसत्य है कि अच्छे खासे सक्षम व्यावसायिक लोग भी रिश्तों के कारण दबाव में आ जाते हैं। एक प्रयोग करें, आपसी रिश्तों में कुछ चीजें जब हमारे हिसाब से न हों तो भी उन्हें होने दें, घटने दें। थोड़ा सोचें कि जब हम पैदा हुए तो उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं था। यही हाल मृत्यु के वक्त भी रहेगा, हमारे चाहने से नहीं, वह अपनी इच्छा से ही आएगी और हमें ले जाएगी। जैसे हम इन घटनाओं को जीवन में देखते हैं वैसे ही रिश्तों से जुड़ी घटनाओं को होने दें, इनके भीतर के सच को स्वीकारने से कई झंझट खुद-ब-खुद खत्म हो जाएंगे।

ज़्यादा व्यस्त लोगों को रिश्ते निभाना ज़्यादा कष्ट देता है। व्यस्त लोग अपनी दिनचर्या में भक्ति ज़रूर करें उसे खूब बढ़ा दें। अपनी व्यस्तता कम न करें, भक्ति और अधिक करें। भक्त को झुकना अच्छा लगता है। जितना झुकना आएगा रिश्ते उतने ही ज़्यादा मजे देने लगेंगे। व्यस्तता के कारण एक रिश्ता खूब आहत होता है, वह है पति-पत्नी का रिश्ता। इसमें पति तो आवेश में चिल्ला लेता है और पत्नी उदास हो जाती है। उदासी अव्यक्त क्रोध होता है। क्रोध अंगारा है रिश्तों को झुलसाने के लिए। संसार राग से चलता है इसलिए उसमें द्वेष भी होगा। इस राग को किसी भी रिश्ते से जोड़ दें तो यह अनुराग बन जाएगा। जैसे भक्त, परमात्मा से अनुराग रखता है वैसे ही हम अपने परिवार में, रिश्तों में अनुराग लाते ही प्रेम को आमंत्रण दे देंगे। जैसे पौधों को जीवित रखने के लिए सींचना पड़ता है, वैसे ही प्रेम के पौधे में संबोधनों का जल डालिए। हमारी संस्कृति में कुछ संबोधन बड़े व्यक्त हैं - नमस्कार, जय रामजी, जय श्रीकृष्ण, जय मातादी, पांव लागी, मत्थाटेकी। अंग्रेजी में गुडमॉर्निंग कहने का अर्थ है आपकी सुबह शुभ हो। हम भारतीय जब जय रामजी की कहेंगे तो इसका अर्थ होगा आप ही शुभ हो, आपको देख ईश्वर का नाम लिया, उसको याद किया। यह संबोधन यह कहता है कि आपको देख परमात्मा याद आया, सोचिए आप कितने शुभ हैं। रिश्तों में प्रेमपूर्ण संबोधनों का खूब उपयोग करें। खासतौर पर पति-पत्नी के बीच के संबोधन शब्द तो अब खत्म ही हो गए हैं। इस रिश्ते में बसे प्रेम के पौधे को संबोधनों के जल से सींचें। व्यस्तता से भरी और भारी ज़िंदगी में भी रिश्ते, सहयोगी बन जाएंगे।

सार : अपने रिश्तों को विनम्र बनकर निभायें, न कि अधिकार व प्रभुत्व की भावना के साथ। सम्बन्धों में प्रेम व सद्भाव ही प्रसन्न जीवन का मूल है।

24 घंटे में थोड़े समय सोचिए, हम क्यों बदल जाते हैं

बहुत बारीकी से यदि खुद का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि हम क्यों बदल जाते हैं। कभी बहुत अच्छे विचार, बहुत अच्छा काम करते हैं और कभी बुरे विचार बुरा काम करते हैं। ऐसा भी होता है भीतर चिंतन अनुचित चल रहा होता है और बाहर सामाजिक मर्यादाओं के कारण भले- भले से बने रहते हैं। हम नहीं चाहते हैं कि ग़लत काम हो और हमारे ही भीतर कोई अलग व्यक्तित्व हमसे ग़लत काम करवाने लगता है। कुल मिलाकर खुद पर से नियंत्रण छूटने की नौबत आ जाती है। विचार करिए ऐसा क्यों होता है? अध्यात्म में हमारे भीतर सत, रज और तम के तीन स्तर बताए गए हैं। इन्हें सतो गुण, रजो गुण और तमो गुण कहा गया है। ये कम और अधिक होते रहते हैं। ऐसा भी होता है कि प्रातःकाल सतो गुण अधिक हों, दिन में रजो गुण बढ़ जाएं और रात को तमो गुण की अधिकता हो जाती है। जब सतो गुण अधिक हों तो हमसे अच्छे काम होते हैं। हमारा चिंतन पुनीत होता है। हम महसूस करते हैं कि हम एक बदले हुए भले आदमी हैं। रजो गुण की अधिकता पर हम दुनियादारी में अपने हानि-लाभ के प्रति अधिक सक्रिय रहते हैं और तमो गुण हावी होने पर हम ऐसे-ऐसे ग़लत काम कर जाते हैं कि हमें जानने-पहचानने वाले लोग भी शायद विश्वास न करें। यह है मानस रोग। जब शरीर रोगी होता है तो डॉक्टर के कहने पर हम पैथोलॉजिकल टेस्ट करवाते हैं। रक्तचाप बढ़ा हुआ हो, शुगर अधिक हो, तो फौरन उसका इलाज करते हैं। क्या हम अपने सत, रज और तम गुणों के स्तर के घटने- बढ़ने का टेस्ट करते रहते हैं? जो लोग इनके अधिक और कम होने के प्रति जागरूक हैं वे उलझनों से बच जाएंगे। इसलिए 24 घण्टे में थोड़ी देर इनका टेस्ट करने का समय निकालिए। इनको परखने के लिए भीतर उतरना पड़ता है। बाहर और भीतर की दुनिया में जो अंतर है वह सत्य और सपने के अंतर जैसा है। बाहर की दुनिया सपनों का संसार है और भीतर उतरते ही हम अपने ही साक्षी हो जाते हैं। आख से क्या देख रहे हैं यह ज़रूरी नहीं है, आंख के पीछे जो देख रहा है उस व्यक्ति को पकड़ना है और वो हम हैं। हमारे होने को जितना पकड़ेगे, उतना ही हम सत, रज और तम के स्तर को संतुलित रख सकेंगे। इस बात के प्रति सावधान रहें कि हमेशा सतो गुण का स्तर बढ़ा रहे, रजो गुण की जब ज़रूरत हो तब बढ़ाएं और तमो गुण लगातार कम होते रहें। इन तीनों का यह ग्राफ़ दुनिया के किसी भी क्षेत्र में समान रूप से लागू होगा और सफलता तथा शांति के समान परिणाम देगा।

सार : हमारे भीतर बस रहे तीन अध्यात्मि गुणों की पहचान कर उनकी प्रवृत्ति से अवगत होना ही प्रत्यक्ष व अव्यक्त का भेद जानने की कुँजी है।

स्वार्थ हमेशा ही गलत नहीं होता, यदि...

हर आदमी में अपनी निजी विशेषता होती है यह उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। कुछ लोग कोशिश करते हैं कि जैसे हम हैं वैसे ही दूसरे भी हो जाएं। यहीं से वे लोग अपनी शर्तों पर दूसरों को जीने के लिए मजबूर करने लगते हैं। संस्थाओं और परिवारों के अपने सिद्धांत, नियम, कायदे होते हैं। इनका पालन करना, करवाना ज़रूरी भी है, लेकिन इसी अनुशासन की आड़ में कुछ गड़बड़ियां शुरू हो जाती हैं। हम परिवार में हों या व्यावसायिक संस्था में, हमसे जुड़े हर मनुष्य की निजता सुरक्षित रहे ऐसा प्रयास करें। व्यावसायिक क्षेत्र में तो प्रतिस्पर्द्धा होती ही है इसलिए वहां स्वार्थ और परमार्थ के फ़र्क की रेखा भी बड़ी बारीक रह जाती है। आजकल महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मुझे सिर्फ मुझसे मतलब है की प्रवृत्ति खूब बढ़ गई है। स्वार्थ की यह वृत्ति भविष्य में अनर्थ को जन्म देगी। लम्बे समय में यह किशतों में की जा रही आत्महत्या साबित होगी। स्वार्थ को सदैव ग़लत न माना जाए। स्वार्थ की वृत्ति होना चाहिए और जन्मजात होती भी है। जिस समय हम अपने स्वार्थ की पूर्ति परमार्थ से करने लग जाएंगे, उस समय यह स्वार्थ भी गुण बन जाएगा। परहित के छींटे निजहित को सुंदर और सुगंधित ही बनाएंगे। परिवार में भी स्वार्थ की वृत्ति का सावधानी से उपयोग किया जाए। परिवार में परमार्थ का अर्थ है प्रत्येक सदस्य की भिन्नता को सम्मानजनक अनुमति दी जाए। सब एक समान हो जाएं, इसका दबाव न बने। जो जैसा बनना चाहता है उसे वैसा होने देने का समान अवसर ज़रूर मिले। चूंकि परिवार में परिणाम गुंथे हुए होते हैं इसलिए हरेक के भविष्य की संभावनाओं पर सावधानी और खुले दिल से नज़र रखनी होगी। परिवार में हर निर्णय को बीज की तरह मानना चाहिए। वह नष्ट भी हो सकता है और वृक्ष होने की पूरी गुंजाईश भी लिए हुए है। निर्णय के बीज को लगातार ठीक से सींचा जाए। संस्थाओं और परिवारों में निर्णय वास्तविकता के आधार पर लिए जाएं न कि अधिकार समझकर थोपे जाएं, क्योंकि दोनों ही जगह मनुष्य की निजी विशेषता खंडित होने के खतरे बने हुए हैं। इसलिए अपनी-अपनी मौलिकता के साथ हरेक को उसके होने के समान अवसर दें। जो भी वह होना चाहे, होश के साथ, धर्म के साथ, सजगता के साथ उसे अवसर दिया जाए, यही परमार्थ है और सही रूप में स्वार्थ भी।

सार : परिवार के प्रत्येक सदस्य की इच्छाओं व भावनाओं का सम्मान करने पर आप भी सम्मान पाएँगे तथा परहित के भाव का प्रसार होगा।

परिश्रम कहीं भीतर के उत्तवेश में न बदल जाए

आवेश के फ़ायदे, भी हैं और नुकसान भी। इसके फ़ायदे लेने पड़ते हैं, लेकिन नुकसान खुद-ब-खुद चले आते हैं। फ़ायदा तब मिलता है जब इसे परिश्रम से जोड़ दिया जाए, वरना आतुरता को उत्तेजना में बदलने में देर नहीं लगती। अच्छे-अच्छे प्रतिभाशाली लोग भीतर से आवेश की प्रबलता में पाए जाते हैं। आज व्यावसायिक क्षेत्र में परिश्रम की होड़ है। खूब काम करते हैं लोग। एक तरह से जीवन जीने के समय का एक बड़ा हिस्सा परिश्रम खा जाता है। लोग भूल ही जाते हैं कि उनके बाहर का परिश्रम कब भीतर आवेश में बदल गया। परिश्रम से प्रतिभा उपलब्ध हो जाती है, आपको लोग विभूति बना भी देंगे और मान भी लेगे। लेकिन यह केवल मेहनत से प्राप्त महानता होगी, केवल श्रम से अर्जित सफलता। किसी एक दिन आपने श्रम नहीं किया तो खुद आपको पता लग जाएगा कि कोई कमी रह गई आपकी दक्षता में, दो दिन नहीं किया तो आपकी कमी का एहसास दूसरों को हो जाएगा। इससे अधिक दिन श्रम नहीं किया तो सभी को पता चल जाएगा कि आप गए काम से। यह सब बाहरी श्रम के दृश्य हैं। संसार पाने के लिए ऐसा ही करना पड़ता है और यह ठीक भी है। लेकिन प्रतिभा का अगला चरण परमात्मा होना चाहिए। इसलिए बाहरी परिश्रम के साथ भीतरी श्रम भी करें। प्राणायाम आंतरिक श्रम है। बाहरी श्रम से जब आप संसार की ओर भाग रहे होते हैं, उसी समय भीतरी प्रयास आपको परमात्मा की ओर भी ले जाएगा। आप अब केवल परिश्रमी व्यक्ति नहीं होंगे, आपकी प्रतिभा परमात्मा के स्पर्श के निकट होगी। यहीं से आपका परिश्रम आपमें आवेश नहीं लाएगा। कुछ नुकसान होते-होते रह जाएंगे। जैसे विचार क्षणिक नहीं होंगे, गहरे और स्थाई रहेंगे, अति भोग-विलास से बचेंगे, मानसिक शांति नहीं खोएंगे। फ़ायदा यह होगा कि आप सोचने वाली बात ही सोचेंगे। मानसिक निर्बलता का दोष दूर होगा। इसलिए परिश्रम के बाद प्रतिभा मिले, लेकिन प्रतिभा पर ही न रुक जाएं, इसे परमात्मा से ज़रूर जोड़ें। बाहर का परिश्रम तथा भीतर के श्रम का अपना-अपना स्वाद होगा और पूरा मज़ा इसी में है।

सार : परिश्रम करने से प्रतिभा निखरती है, किन्तु अपने भीतर उतरकर श्रम (प्राणायाम) करने पर आंतरिक दोष दूर होंगे।

वाणी के मुताबिक कर्म नहीं होंगे तो लोग आपकी बात नहीं सुनेंगे

व्यावसायिक जगत में कहना और सुनना भी एक सौदा होता है। कई बार हम यह शिकायत करते हैं कि लोग हमारी बात सुन नहीं रहे। नेताओं को यह शिकायत रहती है कि जनता उन्हें ठीक से नहीं सुनती। जनता कहती है नेता बहरे हो गए हैं। कार्यालयों में भी अधिकारी अपने अधिनस्थों को लेकर ऐसी ही शिकायत करते हैं। जब कभी हमारे साथ ऐसी स्थिति हो कि हमें लगे हम कह तो रहे हैं पर लोग हमें सुन नहीं रहे, तो थोड़ा आत्म निरीक्षण करिएगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि सुनने वाले से अधिक दोष कहने वाले का हो। शब्द कर्म से प्रभावी बनते हैं। किया हुआ कर्म भी यदि सही है तो बोले गए शब्द अवश्य प्रभाव रखेंगे। कार्य का प्रभाव वाणी पर आता ही है। कर्मशीलता वाक्चातुर्य को बढ़ा देती है। कर्म जितना निष्कामता होगा, वाणी में उतना ही प्रभाव बढ़ जाएगा। कर्म में निष्कामता लाने के लिए स्वयं ही प्रयास करना पड़ता है। जब तक भीतर 'मैं कर रहा हूँ' यह भाव है, तब तक निष्कामता नहीं आती है। निष्कामता का अर्थ है हमारे भीतर हमारे अलावा कोई और है जो करवा रहा है। इसीलिए अध्यात्म कहता है जैसे ही आप थोड़ा समय निकालकर अपने भीतर ध्यान करते हैं, परमात्मा की अनुभूति होती है। भगवान हमारे भीतर हैं और इतने पक्के रूप में तथा गहराई से हैं, यह जान लेने पर कि भीतर भगवान हैं, हम स्वयं ही भगवान हो जाते हैं। परमात्मा हमारी भीतर की दशा का ही नाम है। ईश्वर की पहचान अपने भीतर ही करना होगी। मंदिरों में हम जिस ईश्वर को ढूंढते हैं वह मूर्तियों में हमारी ही अंतरदशा की प्रतिक्रिया है। इसीलिए मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। जो हमारे प्राणों में है उसी की हमने एक पत्थर में प्रतिष्ठा कर दी। इस भाव मात्र से यदि एक पत्थर पूजा जा सकता है, हमारे लिए प्रेरणा का केन्द्र हो सकता है, तो फिर हम स्वयं अपने भीतर उतरने के बाद भगवान होने की अनुभूति करने के बाद उस आत्मविश्वास, उस आनंद को नहीं छुपा सकते। अपने भीतर उतरने का यह अर्थ नहीं है कि बाहर की दुनिया छोड़ दी जाए। जैसे लंबी यात्रा यदि पैदल की जाए तो बीच-बीच में विश्राम करने से थकान भी दूर होती है और अगली यात्रा के लिए ऊर्जा भी मिल जाती है। ठीक इसी तरह जीवन की यात्रा में विश्राम का अर्थ है अपने भीतर उतरना। आप किसी भी क्षेत्र में हों थोड़ा समय इस अंतरयात्रा को भी ज़रूर दें।

सार : कर्ता भाव तज दें। अपने शब्दों (कहे गए) और कर्मों (किए गए) में सम्बन्ध बनाएँ, फिर अपने भीतर उतरने की यात्रा का योग बनेगा।

संसार की यात्रा में जब अंधेरा आए तो यह करें

मार्ग का अंधकार और मन की पुकार यह समस्या सभी के जीवन में अलग-अलग रूप से आती है। जब हम अपने कार्यक्षेत्र में जुटे रहते हैं तब कभी-कभी एक धुंध सी अपने निर्णयों के प्रति, विचारों के प्रति और गति के प्रति आ जाती है, जिसको कहते हैं- कुछ समझ नहीं आता। इसी तरह एक समस्या यह भी होती है कि भीतर से कोई हमें आवाज़ लगाता है कि यह काम करो या न करो। बाहर लोग, स्थितियाँ, दायित्व तो हमें पुकारते ही हैं लेकिन भीतर भी कुछ आवाज़ें चलती रहती हैं। बाहर से जो लोग हमें आवाज़ लगाते हैं, बुलाते हैं, वे तो फिर भी नज़र आ जाते हैं, लेकिन भीतर की आवाज़ें हमें और अधिक उलझन में डाल देती हैं। यहीं से भ्रम शुरू हो जाता है। एक तो बाहर अंधकार हो जाए, उस पर भीतर भ्रम आ जाए, तो आदमी ग़लत निर्णय लेता है तथा असफल होने लगता है। इन दो बाधाओं को पहले तो समझा जाए, फिर इससे निपटा जाए। मार्ग का अंधकार विवेक के प्रकाश से खत्म होता है और भीतर की पुकार सुनने के लिए थोड़ा एकाकी यानी एकांत साधना पड़ता है। बाहरी भीड़ से अलग होकर अपनी निजता के निकट जाकर इन भीतरी पुकारों को सुनना आसान हो जाता है। संसार की यात्रा में जब अंधेरा आता है तो विवेक की मदद लीजिए। अपने विवेक को जगाने के लिए परमात्मा से थोड़ा राग जोड़ना पड़ेगा। अभी हमारा संसार के प्रति राग होता है और इसीलिए भगवान के प्रति विराग हो जाता है। हम संसार से कुछ इस कदर जुड़ जाते हैं कि भगवान की तरफ बिल्कुल पीठ कर लेते हैं। ईश्वर से राग जुड़ने पर संसार के प्रति विराग जाग जाता है, लेकिन ध्यान रखें दुनिया के प्रति विराग का यह अर्थ नहीं है कि दुनिया छोड़ दें। दुनिया की तरफ पीठ करते ही परमात्मा दिखने लगता है, लेकिन पीठ करने का अर्थ दुनिया को नकारना नहीं है। उसके और भगवान के महत्त्व को ठीक से समझना ही दुनिया की तरफ पीठ करना है। मामला समझने का है, नकारने का नहीं। दोनों का महत्त्व जब समझ में आता है तब जो राग भगवान के प्रति होता है वह भक्ति बन जाता है। भक्ति कमज़ोर लोग नहीं कर सकते, यह साहसी लोगों का काम है। जैसे ही यह साहस जागता है। विवेक अपने आप सक्रिय हो जाता है और बाहरी अंधेरे उस विवेक के प्रकाश में दूर होने लगते हैं।

सार : हृदय की पुकार और बाहरी जगत के श्रम के बीच
आई दुविधा को एकांत साधना द्वारा मिटाया जा
सकता है।

शुभ को शीघ्र करें, अशुभ को टालें

ज़िंदगी को दो तरीकों से देखा जा सकता है। पहला, पानी पर खिंची लकीर की तरह और दूसरा, पत्थर पर बनाए निशान के माफ़िक। यदि पानी पर खिंची लकीर की तरह देखें तो जीवन आज है कल नहीं, भरोसा नहीं। इस कारण अपने निर्णय पर कार्यान्वयन विलंबित न करें। टालना घातक हो सकता है। शुभ को शीघ्र करें और टालना हो तो अशुभ को टालें। इन कामों में हम खुद ही अपने लिए रुकावट बन जाते हैं। पानी पर खिंची ज़िंदगी को जानने और जीने के लिए न सिर्फ़ उसमें कूदना पड़ेगा, वरन् डूबना भी पड़ेगा। किनारे पर बैठकर केवल लहरें गिनी जा सकती हैं, जीवन जिया नहीं जा सकता। जिन्हें काम टालने की आदत पड़ गई हो उन्हें इस दर्शन को समझना होगा। अध्यात्म हमेशा संपूर्ण सफ़ाई को प्रेरित करता है। जब भीतर से पूरी तरह सफ़ाई हो जाए यानी पूरी पवित्रता, तब परमात्मा जीवन में प्रवेश करता है। पवित्रता परमात्मा को खूब पसंद है। हमें आज की अपनी जीवनचर्या में पवित्रता का अर्थ नो पेंडिंग सिचुएशन मानना चाहिए। सभी कुछ शत्रुप्रतिशत करें। इसीलिए जो लोग अपनी तमाम व्यावसायिक व्यस्तता के बावजूद भी मेडिटेशन करेंगे वे हर काम को पूरा करने का स्वभाव पा लेंगे। क्योंकि शत्रुप्रतिशत का नाम ही ध्यान है। जो एक प्रतिशत भी अपने को बचाएगा वह 99 वें प्रतिशत का ध्यान खो देगा। पूरे डूबने का नाम ध्यान है। जैसे पानी सौ डिग्री पर वाष्पीकृत होकर भाप बनता है और शून्य पर आकर जम जाता है, बर्फ़ हो जाता है। इसी तरह हमें अपने व्यावसायिक जीवन में अपने काम के अंजाम को लेकर या तो भाप बनना है या जम जाना है बर्फ़ की तरह। यह दो स्थितियां चरम हैं, शत्रुप्रतिशत हैं। मेडिटेशन हमें भीतर से स्थिर करता है। बिना ध्यान के हम थर्मामीटर की तरह अपने व्यक्तित्व का पारा ऊपर-नीचे गिराते रहेंगे। बाहर की हर परिस्थिति से हम प्रभावित होंगे। इसी कारण शत्रुप्रतिशत परिणाम में रुकावट आएगी। ध्यान हमें भीतर से स्थिर करेगा। ज़िंदगी चट्टान पर बने निशान की तरह होगी ज़िन्दगी, दृढ़ और सफल।

सार : कर्म तो हर स्थिति में करना ही होगा। सर्वोत्तम मार्ग है हर काम को पूरी लगन और ध्यान के साथ करना।

हमें क्या मिला से ज़्यादा सोचें कि हमने क्या दिया

जीवन में कई बार हम उन चीजों को महत्वपूर्ण मान लेते हैं जो गौण हैं और जो महत्वपूर्ण है उन्हें कमतर आंक लेते हैं। यहीं से गड़बड़ शुरू हो जाती है। हमें अपने व्यावसायिक जीवन में मान और योगदान दोनों के महत्व को अपनी-अपनी जगह ठीक से समझना होगा। मान यानी रिवाँर्ड। जब हम सफल होते हैं, अनुभूति और अलग हटकर काम करते हैं तो दुनिया हमें मान देती है। सफल लोग कभी-कभी मान में उलझ जाते हैं और इतने अधिक उलझ जाते हैं कि फिर उनके लिए मान ही महत्वपूर्ण हो जाता है। फिर वे जो भी काम करते हैं रिवाँर्ड के लिए ही करते हैं। रिवाँर्ड हमारे उत्साह का कारण बने, प्रेरणादायी हो, यहां तक तो ठीक है लेकिन मान की अधिक आकांक्षा धीरे से अहंकार को जन्म देती है और यहीं से सारा किया-धरा व्यर्थ हो जाता है। होना यह चाहिए कि रिवाँर्ड से अधिक हम योगदान पर टिकें। हम जो भी काम कर रहे हैं और यदि लगातार सफल भी हो रहे हैं तो इस पर विचार करें कि उस व्यवस्था में, समाज में, परिवार में और राष्ट्र में हमारा योगदान क्या है। हमने क्या और कितना योगदान किया है। संसार में जो हमें मान मिला है, क्या हमने उससे अधिक योगदान दिया है! तीन क्षेत्रों में हर व्यवस्था हमसे योगदान मांगती है- स्वास्थ्य, शिक्षा और ईमानदारी। योगदान के प्रति हम सावधान रहें इसके लिए एक काम करते रहिए, कार्य के परिणाम को सेवा मानें। हम जो भी काम कर रहे हों और उसका जो भी परिणाम हमें मिले उसे सेवा से जोड़ दीजिए। सेवा का अर्थ बहुत व्यापक लेना चाहिए। सेवा का अर्थ केवल परमात्मा की पूजा ही न मान लें। कुछ लोग परमात्मा की मूर्ति की भरपूर सेवा करते हैं। करते-करते इतने आदी हो जाते हैं कि वे यह भूल जाते हैं कि यदि पत्थर में प्राण नहीं देखे तो पत्थर, पत्थर ही रहेगा। इसलिए हर मूर्ति को पहले प्राणप्रतिष्ठित किया जाता है। और जो सचमुच मूर्ति में प्राण देखेगा वह फिर जीते-जागते मनुष्यों के प्रति भी अलग दृष्टि रखेगा। उसके लिए सेवा के अर्थ बदल जाना चाहिए। जितने भाव से मूर्ति पूजा की जा रही हो, वही भाव पति-पत्नी में, माता-पिता में, संतान-मित्रों में और अपने संस्थान में काम करने वाले प्रत्येक कनिष्ठ और वरिष्ठ सदस्यों के प्रति भी होगा। आपने सेवा के इस स्वरूप को छुआ और आप मान, रिवाँर्ड के सही अर्थ को जान जाएंगे। इसलिए ध्यान रखें, योगदान हमारी बुनियाद होना चाहिए और मान इमारत की तरह होगा। लोग इमारत को ही बुनियाद मानने की भूल कर जाते हैं।

सार : सफलता अथवा श्रेष्ठता से मिलने वाले श्रेय को अहंकार में परिवर्तित न होने दें, और सफलता की दिशा में किए जाने वाले अपने प्रयास को संसार की प्रगति में योगदान की तरह देखिए।

काम को जीवन से जोड़े

हम कोई भी काम करें, यदि उसको जीवन से जोड़कर किया जाए तो आनंद बदल जाता है। अभी हम अपने कार्यों को रोज़ीरोटी से जोड़ते हैं, करियर से जोड़ते हैं, धन से, नाम से, अहंकार से जोड़ते हैं। काम को जीवन से जोड़ना बिल्लकुल अलग बात है। चुनौतियां सबके सामने आती हैं। चुनौतियां जब जीवन से जुड़ जाएं तो जीवन के भी अर्थ बदल जाते हैं और चुनौतियों का सामना करने के तरीके भी बदल जाते हैं। इस बात को हमेशा ध्यान रखें, चाहें हम व्यावसायिक काम कर रहे हों या पारिवारिक दायित्व निभा रहे हों, चुनौतियों से कभी मुंह न चुराएं। जीवन में चुनौतियां जितनी अधिक होंगी, जीवन उतना अधिक निखरेगा। जिन लोगों के सामने कोई चुनौती नहीं होती उनके जीवन में फिर निखार भी नहीं आता। हम कोई भी बड़ा काम करें एक स्पष्ट दर्शन, विचार हमारे पास होना चाहिए और उसमें यह बात बनी रहनी चाहिए कि चुनौतियां आने पर उनका निपटारा सहजता से किया जाएगा। हमारे आसपास के लोग, चाहे वो हमारे साथ व्यावसायिक क्षेत्र में काम कर रहे हों या परिवार के सदस्य हों, छोटी या बड़ी समस्या हमें देते ही रहते हैं। हम छोटी-छोटी समस्याओं में बड़ी-बड़ी ऊर्जा लगाकर उलझ जाते हैं। या तो हम समस्या का सामना करने में कतराने लगते हैं या फिर उसमें बेकार में समय नष्ट करते हैं। इस बात का ध्यान रखें कि छोटी समस्याओं को तत्काल निपटाएं और जीवन में बड़ी चुनौतियों को बनाए रखें। जिन लोगों ने बड़ी चुनौतियों का सामना किया है उनका व्यक्तित्व खूब निखरकर आया है। हम अपने देश का ही उदाहरण लें। आज एक आम शिकायत की जाती है कि हमारे पास अब वैसा नेतृत्व नहीं रहा, वैसा नेता नहीं रहे जैसे आज़ादी के पहले थे। इसका कारण भी है कि उस समय आज़ादी प्राप्त करना एक बड़ी चुनौती थी और बड़ी चुनौतियों ने बड़े लोग तैयार किए। आज भी भ्रष्टाचार, निक्ममापन जैसी चुनौतियां हैं। ईमानदारी से धन कमाना भी एक बड़ी चुनौती है। इसे जीवन में उतारें, ग़लत बात के लिए संघर्ष करें, उसे दूर करें। चुनौतियां व्यावहारिक हों या पारिवारिक, आध्यात्मिक व्यक्तित्व बनाए रखिए। अध्यात्म एक उच्च स्तरीय दूरदर्शिता का नाम है। देखा जाए तो यह अंतःचेतना को परिष्कृत करता है और पूरी तरह से वैज्ञानिक दृष्टि हमें देता है। इसलिए चुनौतियां बड़ी हों लेकिन सामना करने की दृष्टि आध्यात्मिक होना चाहिए।

सार : कठिन परिस्थितियाँ हमारे जीवन को माँजकर उसे उन्नति के पथ पर डालती हैं। इनसे घबनाएँ नहीं और बेहतर बनने का मौका मानकर इन्हें स्वीकार करें।

कम बोलने वाले हमेशा अधिक सुने जाएंगे

जब हम किसी से बोलते हैं, उस समय अपनी ही वाणी को हम स्वयं भी सुन रहे होते हैं, लेकिन इस पर ध्यान नहीं देते। हम इस बात में रुचि रखते हैं कि जो हम बोल रहे हैं वह दूसरा सुने। क्योंकि दूसरे को सुनाने के लिए ही हम बोल रहे होते हैं। आध्यात्मिक जगत में ऋषियों ने एक बात पर ज़ोर दिया है कि जब आप बोलें तो स्वयं भी शब्दों को सुनें। यह भी एक कला है। जो लोग स्वयं को सुनना बंद कर देते हैं, धीरे-धीरे वे दूसरे से बात करते समय बड़बड़ाने लगते हैं। बातचीत के चार स्तर हैं, चाहे घर में करें या अपने कामकाज की जगह। आदमी इन चार स्तरों से गुज़रकर ही बातचीत करता है। पहली है सीधी बातचीत। आपने कहा, दूसरे ने सुना। दूसरे स्तर पर लोग बड़बड़ाने लगते हैं। यह एक आदत होती है। दूसरा सुने या न सुने खुद को बोलना है तो बोलेंगे। इसे ही बड़बड़ाना कहते हैं। तीसरा स्तर होता है हर बात पर प्रतिक्रिया करना। किसी ने कुछ बोला तो यह ज़रूरी नहीं है कि हम उसका उत्तर दे ही दें। कई बार सामने वाला हमसे विनोद करता है और उसके विनोदी शब्दों का यदि उत्तर दिया जाए तो कभी-कभी विनोद, विवाद में बदल जाता है। विनोद का मज़ा तब और बढ़ जाता है जब आप किसी की टिप्पणी पर बिना बोले हुए मुस्कुराते हुए उसे सुनें। और चौथा स्तर है समझाना। कई बार हमें अपने से छोटों को, अधिनस्थों को या बड़े लोगों को भी समझाना पड़ता है। बातचीत के इस स्तर में विचार स्पष्ट हों, विषय की पर्याप्त जानकारी हो, प्रस्तुति तर्कपूर्ण हो लेकिन कहीं भी सामने वाले का अपमान न हो। इसीलिए भक्ति के क्षेत्र में विनम्रता का बड़ा महत्त्व बताया है। जो लोग भक्ति करते हैं वे छानकर बोलते हैं। जो लगातार मेडिटेशन करेंगे उन्हें बातचीत की पाँचवी कला आ जाएगी और वह होती है केवल आंख के इशारे से बोलना। आपके आसपास एक ऐसा प्रभामंडल बन जाता है कि आपको अधिक शब्द नहीं कहने पड़ते, सिर्फ संकेतों से काम चल जाता है। शब्दों में भी ऊर्जा होती है। इसलिए बोलचाल में इनका संतुलित उपयोग करना चाहिए। अधिक बोलना बहुत सारी ऊर्जा खा जाता है। बड़बड़ाना, हर बात पर जवाब में कोई न कोई टिप्पणी करना। यह सब थकान और तनाव का कारण बनते हैं। बातचीत की ऊर्जा बचाने के लिए शुरुआत यहीं से करिए, आप जो भी बोल रहे हों उसे स्वयं गहराई से सुनें। इससे बेकार के शब्द कम होंगे और गरिमामयी शब्द अधिक होंगे। आप पाएंगे कि बोलने के बाद आप थकने के बजाय तरो-ताज़ा हो गए।

सार : व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने में इन तीनों का प्रयोग बड़ा महत्त्व रखता है - बोलना, सुनना और समझना। बोलने में संतुलन रखें, सुनते समय धीरज रखें और समझने की क्षमता विकसित करें।

असली लीडर बाहर से प्रखर व मुखर पर भीतर से पूर्ण शांत होता है

परमात्मा एकांत में मिलता है और भीड़ में खो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि संसार की विस्मृति जितनी अधिक होगी परमात्मा की स्मृति उतनी सघन होगी। यह संवाद जितने सही हैं उतने ही इसके अर्थ को ठीक से उपयोग में न लाने के कारण गलत भी हो जाते हैं। शांत रहने का लोगों ने तरीका निकाला कि एकांत में चलो और एकांत का अर्थ यह ले लिया कि सबसे कट जाओ। बस, यहीं से गड़बड़ शुरू होती है। इसीलिए व्यावसायिक कामकाज के स्थलों पर टीम वर्क में लोग असफल हो जाते हैं। समूह का नेतृत्व करने के लिए कई लोगों से जुड़ना पड़ता है। लीडर वही है जो भीतर से शांत हो और बाहर से अनेक लोगों से जुड़ सके। उसकी शांति दूसरों को महसूस हो लेकिन बाहर का शोर भीतर आकर उसकी शांति को भंग न करे। ऐसा ही भारतीय परिवारों के कार्यक्रमों में भी होता है। जिन्हें टीम वर्क की आदत न हो वे लोग पारिवारिक उत्सवों के समय अपने आप को बेचैन महसूस करते हैं। भारत, उत्सव परंपरा का देश है। एक घर में, समाज में, परिवार में जब बहुत सारे लोग किसी एक उद्देश्य के लिए उत्सव भावना से मिलते हैं तो उस समय कई अहंकार, रिश्ते, परम्पराएं भी मिल रही होती हैं और टकराने भी लगती हैं। अपने लोगों का समूह भीड़ बन जाता है और यह भीड़ एक-दूसरे पर अपने-अपने तरीके से आक्रमण भी करती है। एक-दूसरे के प्रति व्यंग्य, विनोद, अपेक्षाएं इतनी बढ़ जाती हैं कि उत्सव का उत्साह भंग होने लगता है। हर कोई अपने अहंकार की तृप्ति चाहता है। व्यावसायिक क्षेत्रों में तो रिश्ते प्रोफेशनल होते हैं। इसलिए समूह में काम करते समय लोग एक-दूसरे की भावनाओं की कद्र नहीं करते, लेकिन जब एकत्रीकरण परिवार में हो तब चुनौतियां और बढ़ जाती हैं, क्योंकि परिवार रिश्तों की श्रृंखला होता है। इसमें हर कोई सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ रहा होता है, कभी उम्र से, कभी रिश्ते से। ऐसे में भी भारत में उत्सव क्यों बचे रहे इसका कारण यह है कि भारतीयों ने अपने अधिकांश उत्सव संस्कारों, धर्म और अध्यात्म से जोड़ रखे हैं। जो लोग भक्त हैं उनके लिए भगवान भगवत्ता और व्यक्ति दोनों होता है। भगवत्ता भीतर का मामला है और व्यक्ति के रूप में भगवान बाहर की स्थितियों से जुड़ा है। जब हम एकांत में हों तो भगवत्ता से जुड़े और जब कई लोगों के बीच हों तो भगवान को व्यक्ति मानें, स्थिति मानें और तब उस उत्सव या आयोजन में शरीक प्रत्येक व्यक्ति में भगवान की झलक दिखेगी। हर कार्यक्रम परमात्मा का आयोजन नज़र आएगा और यहीं से हमारे भीतर की भक्ति और प्रेम पूरे वातावरण को आनंदमयी बनाएंगे। इसीलिए भारत में चाहे घर हो या बाहर की व्यावसायिक दुनिया, उत्सवों को धर्म और अध्यात्म से जोड़कर रखा है और इसी भाव से जो लोग इसे जिएंगे वे अपने अलावा औरों के होने का आनंद भी उठाएंगे।

सार : वास्तव में नेतृत्व करने की क्षमता उसी व्यक्ति में होती है, जो हर परिस्थिति में भीतर से शांत बने रहकर बाहरी गतिविधियों और बाधाओं का प्रबंधन कर सके।

आभार मानना चमत्कारी शक्ति है, तब आपको कई गुना अधिक मिलने लगता है

जिंदगी को यदि मस्ती से जीना है तो जीवन को बाहों में भरना आना चाहिए। जो लोग जीवन का आलिंगन प्रेम, सौहार्द्र, करुणा और आभार से करेंगे उनके लिए जीवन भी वही सब कुछ लौटाने को तैयार हो जाता है। जिंदगी की घोषणा है मेरे पास जो लेकर आओगे, मेरे साथ जैसा भी करोगे, मैं वैसा ही लौटा देती हूँ। यदि हम जीवन को प्रसन्नता देंगे तो वापस भी वही पाएंगे। इसलिए एक काम जरूर करें कि हम किसी भी क्षेत्र में हों, हमारी जो भी सफलता हो उसके प्रति सबका आभार जरूर व्यक्त करें। हमारे कृतज्ञ होने का भाव सदैव ऊँचा होना चाहिए। इस बात को कभी न भूला जाए कि जीवन में जो हमें उपलब्ध हुआ है वह हमारे अकेले की वजह से नहीं है। बहुत सारे लोगों ने इसमें अपना समय, श्रम, धन और रुचि प्रदान की है। इसमें परिवार के सदस्य भी शामिल हैं और संसार के लोग भी। हर एक के प्रति आभार व्यक्त करें। जो आभार व्यक्त करने में कंजूस होगा वह खुशियों के मामले में भी कंगाल हो जाएगा, लेकिन ध्यान रखें आभार व्यक्त करते समय मैत्री भाव हमारे भीतर जरूर होना चाहिए अन्यथा आभार एक औपचारिकता बन जाएगा। आभार में न भय हो, न लोभ। देखने में आता है कि अधिकांश लोग अपने परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों के मामले में आभार व्यक्त करने में संकोच करते हैं और कंजूसी भी। हमारे यहां सारी रिश्तेदारी गृहस्थी तक सीमित हो जाती है। हम इसे बाहर समाज में नहीं ला पाते। इसीलिए हमारे परिवारों में रिश्ते तो पनप जाते हैं लेकिन मित्रता नहीं पनप पाती। लोग मित्र ढूंढने के लिए घर से बाहर भागते हैं। सगे भाई-बहन, देवर-भाभी, माता-पिता और संतान ऐसे अनेक रिश्ते हैं जो अभिन्न मित्रता में नहीं बदल पाते। मित्रता के मौके कुटुम्ब से बाहर खोजे जाते हैं। सारे नाते परिवार में हैं, पर दोस्त कोई नहीं होता क्योंकि आभार की वृत्ति में हमने मैत्री भाव नहीं रखा और बिना परिवार के सदस्यों की मदद के आप कभी श्रेष्ठ बन भी नहीं सकते। इसलिए मैत्री भाव के साथ आभार व्यक्त करें, घर में भी और बाहर भी। जीवन को यह अंदाज़ पसंद है। यह एक सकारात्मक क्रिया होगी। ऐसे मैत्री भाव से आभार देने वालों को जीवन झोलियां भरकर खुशियां लौटाता है। इसलिए हमारे प्रति किसी ने छोटा या बड़ा कोई भी योगदान किया हो, खूब आभार लौटाएं, लेकिन याद रखें मैत्री भाव के साथ।

सार : मैत्री भाव रखते हुए कृतज्ञता व्यक्त की जाए तो हम सभी को अपना बना सकते हैं, भले ही वे परिवार के सदस्य हों अथवा कोई और।

आपकी व्यावसायिक प्लानिंग में परिवार का भी हक रखें

आने वाले समय में वे ही लोग सफल होंगे जिनके पास काम करने के पहले उसकी योजना होगी। योजना निर्माण क्रियान्वयन कम चुनौती का काम नहीं है। अच्छी योजना बनाने वाले यदि बेहतर क्रियान्वयन भी कर डालें तो सोने पे सुहागा समझ लें। भारत के ऋषि-मुनियों ने अध्यात्म को जिस तरह से शास्त्रों में व्यक्त किया है वह योजना निर्माण का बहुत अच्छा उदाहरण है। ज्ञान, कर्म और उपासना को खण्ड में बांटना ही प्लानिंग की शुरुआत है। कई बार मुझसे पूछा जाता है आखिर अध्यात्म है क्या? साधारण सी परिभाषा यह है कि अपनी आत्मा में स्थित होना अध्यात्म है। यूं तो बहुत गहरी, गहन परिभाषाएं, व्याख्याएं हैं अध्यात्म की, लेकिन और अधिक साधारण शब्दों में कहें तो बाहर से कटकर थोड़ा अपने भीतर उतरना, अपने होने की खोज करना, अन्तर्मुखी होना और एकांत साधना ये सब अध्यात्म के रूप हैं। जैसे ही हम अध्यात्म को समझते हैं और जीते हैं, यहीं से जीवन की प्लानिंग और होमवर्क ठीक से शुरू हो जाता है। अपने व्यावसायिक जगत में योजना बनाते समय अध्यात्म का यह अंदाज बड़ा काम आएगा। योजना निर्माण में निजी, पारिवारिक, सामाजिक और व्यावसायिक मूल्यों को ज़रूर ध्यान में रखा जाए। मूल्यों की उपस्थिति पूरे निर्माण को नैतिक स्पर्श देगी। जब इस योजना के क्रियान्वयन का अवसर आएगा तो काम करने वालों को एक आश्वासन भरा वातावरण मिलेगा। उसे इस बात का भरोसा बनेगा कि योजना उसके हित और क्षमता की पूर्ति करने की दृष्टि से भी बनी है। अध्यात्म में प्रेम का बड़ा महत्त्व है। योजना और क्रियान्वयन में भी प्रेम का रिश्ता होना चाहिए। चिंतन करने वाले कार्य करने वालों के प्रति जितना प्रेमपूर्ण रहेंगे योजना पर अमल करवाना उतना आसान हो जाएगा। प्लानिंग को प्रेमपूर्ण बनाए रखें। योजना की हर पंक्ति में एक्शन का मौन बल होता है। इसलिए इसे प्रेम का स्पर्श दिया जाए। और अंत में एक खास बात, योजना भले ही अकेले में, एकांत में, कुछ लोगों द्वारा ही बनाई जाए लेकिन इसे याद रखें कि क्रियान्वयन के समय इसमें कई लोग शामिल हो जाएंगे। अकेले और भीड़ की समझ होने के साथ योजना में संतुलन बना रहना चाहिए। अध्यात्म में इसका सुंदर विवेचन आता है। जो भीड़ में भी साधु बन जाए और बना रहे वह महत्त्वपूर्ण है। अकेले में तो किसी को भी फ़कीरी हो सकती है। कभी-कभी तो अकेले में लाचारी हो जाती है कि साधुता घटा लो। मजबूरीवश तो महात्मा कई लोग बन जाते हैं। असली संतत्व की परीक्षा तो तब होती है जब दूसरे की मौजूदगी हो, अन्य के हस्तक्षेप के बाद भी फ़कीरी उतर जाए, यह अध्यात्म सिखाता है। योजना में इसी भाव को याद रखा जाए कि योजना निर्माण का प्रत्येक विचार बाद में भीड़ से गुजरेगा, समूह के हाथों में होगा और उस समय श्रेष्ठ विचार और कर्म दोनों जुड़ जाएं तो सफलता प्रवेश करेगी ही।

सार: जीवन को व्यवस्थित रूप से जीने के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य और उनका क्रियान्वयन करेंगे, तो निश्चित रूप से क्षमतावृद्धि होगी।

ज़िंदगी में लंबाई और चौड़ाई से अधिक गहराई और ऊँचाई ज़्यादा मायने रखती है

सामान्य रूप से माना जाता है कि यदि संकट आए तो प्रगति में बाधा आ जाती है। इसलिए लोग संकटों से बचना चाहते हैं, लेकिन अब समय बदल गया है। पहले चुनिंदा लोग योग्य होते थे और अब योग्य लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। अधिकांश लोग खूब परिश्रम कर रहे हैं। सफलता हासिल करने के सूत्र सामान्य लोगों के हाथ में भी पहुंच गए हैं। ऐसे में सीधे-सीधे चलकर कामयाब होना कठिन है। इसका अर्थ यह नहीं कि ग़लत मार्ग अपना लिया जाए। इसका अर्थ यह है कि हमेशा सुरक्षित खेल नहीं खेला जा सकता। लाईफ में ख़तरे उठाना ज़रूरी हो गया है। आप कितना जोखिम उठा सकते हैं इससे आपकी सफलता दूसरों के मुकाबले अधिक सुनिश्चित होगी। जीवन के खतरे जीवन को और गहरा बनाएंगे। अधिकांश लोगों की नज़र में ज़िंदगी का अर्थ है लम्बाई से जीना, लेकिन जितना आपका परिचय अध्यात्म से होगा, आप समझ जाएंगे कि जीवन लम्बाई और चौड़ाई से ज़्यादा गहराई और ऊँचाई का मामला है। सागर की तरह गहरा उतरना होगा और पहाड़ की तरह ऊँचाई जीवन में लानी होगी। इन दोनों के साथ किसी भी खतरे का सामना करने के लिए हम सक्षम होंगे। इसे कहते हैं जिसके पास प्रशांत महासागर की गहराई होगी और गौरीशंकर की तरह पर्वत का शिखर होगा, वह जीवन में कैसा भी खतरा उठाने में घबराएगा नहीं। जो लोग जीवन में रिस्क लेना चाहते हैं वह दो बातें ध्यान में रखें-पहली, अपने ऊपर भरपूर भरोसा रखने के बाद भी इस बात का विश्वास हो कि हमसे हटकर और बढ़कर भी कोई परमशक्ति है, उस पर भी भरोसा रखा जाए। दूसरी बात, उसे ज़बर्दस्त संयम बरतना होगा। परिश्रम, समय, एकाग्रता की बचत करना होगी और इन्हें अपने विचारों से लगातार जोड़े रखना होगा। इन दो बातों के साथ रिस्क फ़ैक्टर, जोखिम कम और सफलता का तरीका अधिक बन जाएगा। भरोसे का अर्थ है भगवान से जुड़ना और संयम का अर्थ है तन, मन, धन के प्रति नैतिक प्रतिबद्धता। यदि हम तन से कमजोर हैं तो मन और धन लाभ नहीं पहुंचा पाएंगे। मन से कमजोर हैं तो तन और धन बोझ बन जाएंगे। तन, मन और धन का संतुलित संयम न हो तो जीवन गीली लकड़ी से उठ रहे धुँए के समान हो जाएगा। जब हम देखते हैं कि आग में से धुँआ उठ रहा है तो हम मान लेते हैं कि धुँआ अग्नि का हिस्सा है, लेकिन ऐसा है नहीं। यदि लकड़ी गीली है तो ही धुँआ उठेगा, आग का उससे कोई लेना-देना नहीं है, आग हमेशा आग ही रहेगी। असंतुलित जीवन गीली लकड़ी की तरह है, इससे धुँआ ही उठेगा, अग्नि पैदा नहीं होगी। भरोसा और संयम जीवन में किसी भी जोखिम को लेने में काम आएगा और जितना रिस्क फ़ैक्टर मजबूत है, कामयाबी उतनी अनूठी होगी।

सार : जोखिम उठाने का रवैया सफल होने की अधिक संभावना पैदा करता है। स्वयं पर भरोसा रखते हुए धीरज धारण करें।

हाथ में लिए काम को हर हाल में अंजाम तक पहुंचाएं

आदमी की शक्ति, उत्साह और इरादे तब ही प्रशंसा पाएंगे, जब वह जो काम हाथ में ले, उसे अंजाम तक पहुंचा दे। बहुत सारे लोग काम हाथ में लेते हैं और आधा छोड़कर दूसरे काम में लग जाते हैं, या पूरा होने के ठीक पहले थक जाते हैं। काम को अंजाम तक पहुंचाना ही दृढ़ इच्छाशक्ति का सही स्वरूप है। कार्य आरंभ से लेकर अंत तक तथा उसके बीच में सांसारिक तरीकों के अलावा भीतर के आध्यात्मिक साधन भी अपनाना पड़ेंगे। जैसे ही कोई कार्य हाथ में लें, ध्यान रखें कि सफलता की इच्छा कहीं वासना में न बदल जाए। वासना की उत्तेजना शक्ति को ग़लत दिशा में मोड़ देती है। पहला ही कदम लड़खड़ाते हुए उठता है। हिलते-डुलते व्यक्तित्व की आंखें भी मंज़िल को धुंधला देखती हैं। अंजाम तक जाने के लिए एक मानसिक संतुलन ज़रूरी है। तीन बातों पर ध्यान रखें और उन्हें अपने जीवन से जोड़े रखें। पहली बात, कार्य शुरू करते ही प्रेम से भर जाएं। इस समय सबसे काम का यह परिणाम मिलेगा कि क्रोध नियंत्रित हो जाएगा। क्रोध आत्मिक विकास का तो विरोधी है ही, सांसारिक प्रगति में भी बाधा बन जाता है। क्रोध को आध्यात्मिकता के साथ नियंत्रण में न रखें तो वह आवेश की शक्ल में जीवन में प्रवेश कर जाता है। आवेश कार्य को अंजाम तक ले जाने में बाधा बनेगा। प्रेम का दूसरा परिणाम यह होता है कि वह जीवन को सरल बनाता है। सरल जीवन वालों की बुद्धि कम भ्रमपूर्ण होती है। भ्रम मुक्त निर्णय अंजाम तक जाने में सहयोगी होंगे। प्रेम के बाद दूसरी चीज़ करें, घोर परिश्रम। इसका संबंध केवल शरीर से नहीं है। जीवन को पूरी तरह जीना, जमकर जीना, जो भी उपलब्ध है उसका भरपूर उपयोग करने की मानसिकता ही परिश्रम का रूप है। मालिक ने जितना दिया उसे तो जमकर जानें और जीएं, फिर अगले की तैयारी रखें। प्रेम और परिश्रम के बाद तीसरी बात है प्रसन्नता। जो भी करें उसमें खुशी न खोने दें। आरंभ से अंत तक खुशी को दौलत की तरह साथ रखें। प्रसन्नता की अन्तरदशा ही शांति है। शांत चित्त आपको आसानी से अंजाम तक ले जाएगा। खुशी का सांस से बड़ा संबंध है। जितना जागरूक होकर सांस पर नियंत्रण रखेंगे उतने खुश रह सकेंगे। काम को अंजाम तक ले जाने वालों को दुनिया जुबान के पक्के, ईमान के सच्चे और इरादों के दबंग मानती है।

सार : जिस काम की ज़िम्मेदारी लें उसे अंजाम तक अवश्य पहुँचाएँ। तीन चीज़ों के सहारे आप परिणाम आसानी से प्राप्त कर पाएँगे- प्रेम, परिश्रम तथा प्रसन्नचित्त मन।

जीत का संयोग : शरीर, मन और आत्मा का सही तालमेल

व्यक्तित्व तीन बातों से बनता है - शरीर, मन और आत्मा। शरीर स्वास्थ्य के लिए साधा जाता है। ज़रा सी चूक हो जाए, बीमारी घेर लेगी। यदि शरीर ने साथ नहीं दिया तो कई बार मेहनत बेकार चली जाएगी। आज की व्यस्तता के दौर में लोगों का कहना है कि हमें तो बीमार होने का भी समय नहीं है, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि शरीर के साथ ज्यादाती करेंगे तो एक दिन वह साथ छोड़ देगा। शरीर के अलावा व्यक्तित्व का हिस्सा है आत्मा। आत्मा तक पहुंचने के लिए अंतरयात्रा करनी पड़ती है। थोड़े समय के लिए अपने ही भीतर उतरना ज़रूरी है। इन दोनों के बीच में है मन। मन का स्वभाव है अति पर यात्रा करना। या तो वह भोग की अति पर जाता है या तप की अति पर, वह मध्य में नहीं टिकता। जिस दिन व्यक्तित्व में इन तीनों का तालमेल सही हो जाए उसे कहेंगे- जीत का संयोग। इन तीनों का संयोजन जीवन में कलात्मक रूप से करना पड़ेगा। यह पूरी तरह से एक रासायनिक क्रिया है। जब भी आप कोई कार्य हाथ में लें तो आधुनिक प्रबंधन सिखाता है कि यदि जीत का संयोग है तो चीज़ें सरल हो जाएंगी। बाहर की दुनिया में जीत का संयोग का मतलब अपने वरिष्ठ लोगों से अच्छे संबंध, अपने अधिनस्थ व्यक्तियों से काम लेना, परिवार के सदस्यों की सहमति, मित्रों की ओर से मदद। यह सब व्यावहारिक और भौतिक जीत का संयोग हैं। लेकिन, यदि सफलता के साथ शांति चाहिए तो जीत के जोड़ को आध्यात्मिक भी बनाना होगा। शरीर, मन और आत्मा का उपयोग जीवन में वैसा होना चाहिए जैसे वीणा में तारों का होता है। अति पर आते ही वीणा स्वर खो देती है। तारों का संतुलन ही वीणा की मधुरता है। जीवन में यही नियम लागू होगा। जीवन में एक लयबद्धता होना चाहिए, भीतर और बाहर भी। भौतिकता और आध्यात्मिकता की अति पर न टिका जाए, संतुलन बनाएं। जो लोग शरीर, मन और आत्मा के जीत का संयोग को समझ लेंगे वो भीतर से ऋषियों की तरह होंगे और बाहर से श्रेष्ठ प्रबंधक। ऋषि आदतों, विचारों और संस्कारों में अपना मालिक होता है। सब कुछ उसके नियंत्रण में होता है और वह स्वयं को भी नियंत्रित कर लेता है। इधर एक अच्छा प्रबंधक सब कुछ नियंत्रण में कर लेता है लेकिन भीतर से स्वयं को नियंत्रित नहीं कर पाता। इसलिए जीत का संयोग का अर्थ आध्यात्मिक रूप से यह होगा कि हम शरीर से सक्रिय रहें, मन से विश्राम की मुद्रा में रहें और आत्मिक रूप से होश में रहें। इसके भौतिक मायने यह होंगे कि शरीर स्वस्थ रहे, मन अति पर न हो तथा आत्मा बाहर की सफलता का आनंद उठा सके।

सार : शरीर से निरोगी व क्रियाशील बने रहें, मन की आदतों व विचारों को साधें तथा आत्मा को एकांत का रसपान करने दें। शरीर, मन और आत्मा का सुयोग ही शांति और भौतिक आनंद का स्रोत है।

पूजा-प्रार्थना हमारी उगदत नहीं स्वभाव होना चाहिए

योग्यता का विस्तार ही सफलता है। अपने उपलब्ध संसाधनों का नियमानुसार भरपूर सदुपयोग कर परिणाम प्राप्त करने वाले को श्रेष्ठ प्रबंधक माना जाता है। अपने व्यावसायिक कर्म को कर्मकाण्ड की तरह न करें। धर्म के क्षेत्र में कुछ पुजारी अपने कर्मों को भाव शून्य होकर करते हैं। शरीर बाहर से पूजा में यंत्रवत काम करता है और मन पशुवत भीतर से अपने खेल को खेल रहा होता है। इसे लोग घंटों बैठकर पूजा का नाम दे देते हैं। जब रोज़ की आदत बन कर यह पूजा का काम होने लगता है तो समझ लें ठाकुरजी नहलाएं या बर्तन मांजें, दोनों एक ही काम होंगे। हमारा बाहरी स्वरूप इससे भले ही पूजापाठी, भक्त-पुजारी का हो जाए पर आंतरिक खोखलापन और बढ जाता है। इसलिए पूजा को आदत नहीं स्वभाव बनाना चाहिए, वरना वर्षों तक पूजा करने के बाद भी मन अशांत ही बना रहता है। हमारे व्यावसायिक क्षेत्र में भी हम जीवन का यही दृश्य पैदा कर लेते हैं। प्रोफेशनल जीवन संपूर्ण होने के बाद भी परेशान रहता है। बाहर की वाह भीतर की आह को बढाए चली जाती है। अपने प्रोफेशनल काम को भी भाव शून्य कर्म की जगह, पूर्ण समर्पित पूजा की तरह करें। पूजा का ऐसा स्वभाव आपके काम का स्वभाव भी बन जाएगा। संतों का मत है कि जिन्हें परमात्मा पाना हो उन्हें तीन चीजें साधना चाहिए - एकांत, मौन और पूर्ण समर्पण। एकांत का मतलब है भीड़ में भी ऐसे रहना जैसे अकेले हैं। अपने अकेलेपन को दूसरे से भरने की कोशिश न करें, स्वयं इसका रस लें, स्वाद लें, पीने जैसी तृप्ति पाएं। संसार भर से हमारा परिचय होता है, एकांत में थोड़ा खुद से जान-पहचान करें। दूसरा काम करें, जहां तक हो मौन साधें। उन्हीं बातों को बोलें जिन्हें आप भीतर से अच्छे से जान चुके हों। जब तक विचार जाग्रत न हो, उन्हें शब्द मत बना देना और यदि भीतर शब्द बन भी जाएं तो उन्हें वाणी तक लाते-लाते सावधान रहना। वरना मन तो पहले से ही भीतर काफी बकवास भर चुका है और हम उसे ही बाहर उगलने लगते हैं। तीसरी बात, जो भी किया जाए पूर्ण समर्पण के साथ किया जाए। पूरी तल्लीनता के साथ डूबकर करें। चाहे पूजा स्थल हो या कार्यालय, करते समय खुद को ज़रा भी न बचाएं। उतने समय स्वयं का रूपान्तरण होने दें, प्रयास के आरंभ से परिणाम के अंत तक। हमारे व्यावसायिक जीवन में जितना एकांत सधेगा, दुर्गुण, खासतौर पर अहंकार उतना गलेगा। मौन हमारी दूरदृष्टि को पुख्ता करेगा और पूर्ण समर्पण आते ही चाहे कितना ही परिश्रम करें, थकान नहीं होगी।

सार : परमात्मा-प्राप्ति के तीन साधन बताए गए हैं -
एकांत, अर्थात् अकेलेपन और भीड़ में भी आनंदित रहना। मौन, अर्थात् उन्हीं बातों को बोलें जिन्हें महसूस कर चुके हों, अन्यथा शांत रहें। और समर्पण, अर्थात् हर कार्य को पूर्णता से करने की चाह।

मेहनत से सब कुछ हासिल किया जा सकता है, लेकिन...

मानवीय जीवन की विशेषता पुरुषार्थ में होती है। पुरुषार्थ का सीधा सा मतलब है ऐसी वस्तुएं और स्थितियां जो मनुष्य अपने प्रयास और पराक्रम से प्राप्त करता है, जिनके परिणाम उसके हाथों में होते हैं, जिनमें वह अपना कौशल दिखा सकता है। हर मनुष्य के भीतर उसका पुरुषार्थ होता है और हर पुरुषार्थ के भीतर एक मनुष्य होता है। जो लोग नेतृत्व कर रहे हों और उन्हें जब बहुत से लोगों से काम लेना हो तब वे इस बात का ध्यान रखें। आदमी के भीतर के पुरुषार्थ को समझ लें, उसे जगा लें और उसका भरपूर उपयोग कर लें। बहुत सारे लोग ऐसा करने में दक्ष भी होते हैं, बल्कि यूं कहें कि ज्यादातर योग्य प्रबंधक ऐसा ही कर रहे हैं। आदमी की कार्यक्षमता का भरपूर दोहन किया जा रहा है। लगातार ऐसा करते रहने से सब कुछ एकपक्षीय हो जाता है। लोग यह भूल जाते हैं कि जितना महत्व आदमी के भीतर के पुरुषार्थ का उपयोग करने का है, उससे कुछ कम जरूरी नहीं है पुरुषार्थ के भीतर के आदमी को ज़िन्दा रखना। बात गहरी है और इसे आध्यात्मिक दृष्टि से देखना चाहिए। पहली स्थिति में जब हम केवल पुरुषार्थ में टिकते हैं तो सब कुछ यंत्रवत् हो जाता है। लगातार काम करते रहने से आदमी मशीन बन जाता है। धन कमाना उसकी विवशता हो जाती है। जैसे भारतीय समाज में स्त्री का कौमार्य और वैभव दोनों ही विवशता है, जबकि पुरुष का ब्रह्मचर्य और सन्यास स्वेच्छा प्रेरित होता है। इसी प्रकार आदमी मजबूर है काम करने के लिए और प्रबंधन विवश है काम का भुगतान देने के लिए, लेकिन जैसे ही दृष्टि आध्यात्मिक होगी हम पुरुषार्थ के भीतर के आदमी को ढूँढ़ेंगे और यहीं से सृजनात्मकता, संवेदनाएं, भावनाएं पकड़ में आएंगी। अच्छे प्रबंधक आदमी के काम के अलावा काम के भीतर के आदमी को भी टटोल लेते हैं। जैसे ही आप किसी के अंतरतम को स्पर्श करते हैं, उसकी रचनात्मकता बढ़ जाती है, उसके परिणाम देने के तरीके बदल जाते हैं। वह खुद भी खुश रहता है और पूरे संस्थान का वातावरण बोझिल नहीं करता। वह काम के बदले भुगतान पर नहीं टिकता, बल्कि काम के बदले और अच्छा काम करता है। शोषण की जगह इरादों में सेवा आ जाती है। दोनों ही पक्ष एक-दूसरे के लिए भय और संदेह का नहीं, सद्भाव और सेवा का माहौल बना देते हैं। इसलिए कोई भी संस्थान हो, वह अपने काम के घण्टों में थोड़ा समय काम करने वाले लोगों के भीतर जाकर उस मनुष्य को ज़रूर टटोले, जिसकी वजह से दुनिया वैकुण्ठ बनती है।

सार : मेहनत से सब कुछ हासिल किया जा सकता है,
लेकिन केवल यंत्रवत् होकर कार्य नहीं करना है।
अंतर्दृष्टि जाग्रत कर भावनाएँ और सृजन शक्ति
आपकी मेहनत को सार्थक बनाएँगे।

ऊर्जा एक ही है, निर्माण में लगाएं या बर्बादी में

हमें क्या पाना है, क्या छोड़ना है इसका स्पष्ट चिंतन और लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि ऊर्जा दोनों में ही लगती है। व्यावहारिक दृष्टि से ऊर्जा का वितरण समान किया जा सकता है, लेकिन आध्यात्मिक जीवनशैली में ऊर्जा को मोड़ने के लिए सावधानी रखना होगी। हमें ऊर्जा लगाना चाहिए परमात्मा को पाने में, इससे संसार अपने आप छूट जाएगा। लोग इसे ग़लत रूप में ले लेते हैं। संसार छोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि जिम्मेदारियों से भागकर जंगल, पहाड़ या आश्रमों में चले जाएं। दरअसल जैसे-जैसे परमात्मा की अनुभूति बढ़ने लगती है वैसे-वैसे संसार की बाधाएं हमें कष्ट नहीं देतीं। जीवन को सकारात्मक तरीके से लेंगे तो जो पाना है ऊर्जा उसमें लगाएं, जो नहीं पाना है वह अपने आप छूट जाएगा। दूसरा ढंग है नकारात्मक, इसमें जो छोड़ना है सारी ताकत उसमें लगा दी जाती है। विधायक यानी सकारात्मक तरीका कहता है कि घर में रहकर, संसार में रहते हुए व्यवसाय-नौकरी करते हुए भी परमात्मा उपलब्ध हो सकता है। कई लोग जीवनभर यह नहीं समझ पाते हैं कि यह ऊर्जा है क्या? परमात्मा की अनुभूति कई शक्त में होती है। इसी में यह ऊर्जा काम आती है। आज केवल ईश्वर की एक सूरत की चर्चा करें। अच्छा स्वास्थ्य भी ईश्वर का रूप है। इस समय लोग खूब काम कर रहे हैं। इस कारण या तो अच्छी सेहत के प्रति लापरवाह हैं या खराब सेहत के लिए मजबूर हो गए हैं। हमारी जो जीवन ऊर्जा है वह स्वास्थ्य संतुलन और पुरुषार्थ पराक्रम दोनों के काम आती है। थोड़ा शांति से बैठकर अपना ध्यान भीतर ही भीतर नाभि पर टिकाएं तो ऊर्जा महसूस होगी। इस ऊर्जा को प्रतिदिन स्पर्श करें, यह अभ्यास से महसूस होने लगेगी। शारीरिक रोग से बचने के तो मेडिकल विज्ञान ने कई साधन हमें दे ही दिए हैं और हम तत्काल इनका उपयोग कर भी लेते हैं। लेकिन जब हम मानसिक रोगों से घिरते हैं तब इस जीवन ऊर्जा की ज़रूरत पड़ती है। आप अपने कामकाज, परिवार, समाज में किसी भी पद पर हों, पर सबसे बड़ी पदवी है निरोगी-काया, तंदरुस्त रहना तन और मन दोनों से। याद रखें ज़माने भर की चिकित्सा सुविधा होने के बाद भी आरोग्य-रक्षा का आश्वासन नहीं मिल पाता। बीमारियां भी इस समय जीवन में एक बड़ी समस्या है। इसलिए जीवन ऊर्जा को समझें, उससे जुड़े तो परमात्मा को पाने की ओर मुड़ेंगे और अनुचित अपने आप छूटेंगे। वहीं से जीवन में प्रसन्नता, प्रगति और सफलता का आगमन होगा।

सार : सकारात्मक व नकारात्मक, दोनों प्रकार के कार्यों में ऊर्जा की खपत होती है। बेहतर होगा कि स्वस्थ शरीर और सर्वांगीण सफलता हेतु जीवन ऊर्जा का प्रयोग करें।

गलत तरीके से कमाया हुआ धन हमें गलत रास्तों पर ले जाएगा

धन से धन को बढ़ाया जाए। आधुनिक प्रबंधन का यह सूत्र सभी लोग अपनाए बैठे हैं, लेकिन लम्बे समय तक जब केवल इसी फॉर्मूले पर ज़िंदगी चलती है तो धन का लक्ष्य धन ही न होकर भोग बन जाता है। इसीलिए आजकल अधिकांश लोग धन का लक्ष्य भोग बनाकर बैठ गए हैं। वे समृद्धि की सारी कल्पना भोग विलास से जोड़कर चलते हैं। यह सत्य है कि हमारे पास जिनता अधिक धन होगा विलासिता से हमारी दूरी उतनी ही कम होगी। जब हम अपनी वासनाओं से जुड़कर भटकाव की स्थिति में आ जाते हैं तब इसे भोग कहा जाता है। इसलिए धन कमाते समय दो बातों का ध्यान रखें। पहली बात-अर्जित सम्पत्ति से अहंकार का जन्म न हो और दूसरी बात- इसे अनुचित कार्यों में खर्च न करें। धन होता ही उचित अभावों की पूर्ति के लिए है। अपने अभाव को तो दूर करना ही है लेकिन यदि दूसरे लोगों का अभाव भी मिटा सकें तो धन अपने साथ परमात्मा की अनुभूति लेकर आएगा। ऐसा धनवान भगवान के निकट होगा। इसलिए धन कमाते समय उसके सही रास्ते से आने के प्रति अत्यधिक सजग रहें और उसके जाने के मार्ग के लिए सावधान रहें। धन का उपार्जन और उपयोग पवित्रता के साथ ही करें। देखिए, धन का भी निर्माण करना पड़ता है। जैसे भवन का निर्माण होता है, चरित्र बनाते हैं, मूर्ति में प्राण की प्रतिष्ठा होती है, ऐसे ही धन निर्मित होता है। हम अपने जीवन को जितना अधिक अध्यात्म से जोड़ेंगे, जीवन के प्रति हमारी दृष्टि एकदम स्पष्ट हो जाएगी। हम परमात्मा का अंश हैं, उसने हमें बनाया है और ध्यान रखें जल्दी में नहीं बनाया। मनुष्य का निर्माण करने में भगवान पर्याप्त समय देता है। वह शीघ्रता करते हुए कोई गड़बड़ नहीं करता, क्योंकि परमात्मा जानता है जिस मनुष्य को मैं बना रहा हूं, वह बहुमूल्य है। पूरे 9 माह लगते हैं, तब हम तैयार होते हैं और संसार में आने के बाद जब हम धन का निर्माण करते हैं तो परमात्मा की कार्यशैली को भूल जाते हैं। उसने हमें इसलिए तसल्ली से बनाया है कि जब हम अपने जीवन में धन को बनाएं तो उसी धैर्य, समझ, गहराई और ईमानदारी से तैयार करें। एक बात याद रखी जाए कि धन के जितने खतरे हैं उसमें एक बड़ा खतरा है संतानों का बर्बाद होना, क्योंकि आपके द्वारा अर्जित सम्पत्ति का सर्वाधिक लाभांश परिवार और परिवार में भी संतान उठाती है। गलत तरीके से आया हुआ धन संतान को सही नहीं रहने देगा। इसलिए कमाई करते समय शरीर का श्रम, बुद्धि की योग्यता, मन की विश्राम मुद्रा और आत्मा की शुचिता एक साथ होना चाहिए।

सार : धन जीवन की एक बड़ी आवश्यकता है। कमाया हुआ धन अहंकार का कारण न बने और इसका उपयोग उचित प्रकार से हो। परमार्थ में लगाया गया धन भीतर से शुद्धिकरण की भावना उत्पन्न करता है।

खाली दिमाग भगवान का घर भी हो सकता है

काम की अधिकता न तो विचलित करती है, न थकाती है। हम परेशान होते हैं अपनी अस्त-व्यस्त कार्यशैली के कारण। काम का दबाव और तनाव हमें चिड़चिड़ा बना देता है। अपने ही लोगों से अकारण हम उन्हें अपमानित करते हुए बात करने लगते हैं। नतीजे में सारे संबंध बोझिल हो जाते हैं। आइए, इसका एक आध्यात्मिक इलाज ढूँढते हैं। अपने काम को बिस्कूल कम न करें, व्यस्तता में काट-छाँट न करें लेकिन एक प्रयास जरूर करते रहें अपने निजी जीवन को हल्का-फुल्का बनाए रखें। हमारा निजी जीवन जितना बेहतर होगा हम मेहनत और वक्त दोनों का तालमेल सही बैठा लेंगे। निजी जीवन का अर्थ यह नहीं होता कि परिवार के सदस्य, पति-पत्नी और बच्चों तथा मित्रों के साथ रहना, निजी जीवन का अर्थ है खुद के साथ रहना। थोड़ी देर अपने आप को अकेला रखें और उस अकेलेपन को एकांत में बदलें। यह काम पूरा होता है मेडिटेशन से। 10-15 मिनट का ध्यान आपको आने वाले 24 घण्टे के लिए रिलेक्स, हल्का और आरामदेह बना देगा। इसे संयम न मानें, यह जीवन का संतुलन है। जैसे भक्ति के मार्ग पर श्रद्धा अनिवार्य होती है, वैसे ही व्यस्तताओं के दौर में ध्यान जरूरी है। किसी भक्त से पूछें कि उसके लिए श्रद्धा क्यों जरूरी है तो वह बताएगा कि जितनी श्रद्धा बलवती होती है उतना ही विरह बढ़ जाता है। विरह को मिटाने के लिए भक्त प्रार्थना करता है। प्रार्थना को प्रभावशाली बनाने के लिए आंसू बहाए जाते हैं। आंसू के निकलते ही प्रेम जागता है और प्रेम के आते ही भक्ति का आनंद आने लगता है। ठीक यही क्रम ध्यान से जुड़ा है। मेडिटेशन करते ही अपने काम के प्रति निष्कामता जाग जाती है। निष्कामता के आते ही कर्म में स्पष्टता आती है। भ्रम दूर होते ही थकान कम आती है और बिना थके काम का परिणाम मिलने पर मज़ा ही अलग होता है। इसलिए अपने आपको अभ्यस्थ करें कि निजी जीवन हल्का-फुल्का हो। व्यस्तता के समय शालीनता न छोड़े और जितने व्यस्त हों उतना ही परमार्थ की भावना बनाए रखें। दूसरों के हित के लिए सोचने से प्रतिभा निखरती है। निजी जीवन हल्का-फुल्का होते ही बाहरी जीवन में तेजस्विता के दर्शन होने लगते हैं। भीतर शांति और बाहर तेज़ इस संतुलन से सफलता के अर्थ ही बदल जाएंगे।

सार : दैनिक जीवन की व्यस्तताओं को बरकरार रखते हुए भी निजी जीवन को शांत रखा जा सकता है। कुछ समय ध्यान व एकांत हेतु निकालें और भक्ति व प्रार्थना का समागम करें।

अपनों से दूरी की तकलीफ़ से ऐसे उबरें

जीवन में कई तरह की पीड़ा होती हैं। रोग का निदान हम निकाल लेते हैं क्योंकि रोग का संबंध शरीर से है, लेकिन पीड़ा मन का मामला है। यह भीतर से अपना प्रभाव दिखाती है। आज कामकाजी वक्त में जब आदमी के पास सब कुछ है, एक मामले में वह निर्धन है और वह है समय का अभाव। आदमी के पास अपनों के लिए ही समय नहीं निकल पाता। ऐसे समय एक पीड़ा सताती है और वह है विरह की पीड़ा। कामकाज के लिए दूर जाना पड़ता है, लम्बे समय तक दूर पर रहने वाले लोगों के घर वालों के लिए यह दूरी असहनीय हो जाती है। इस विरह की पीड़ा को ठीक से न समझने के कारण कई रिश्ते टूट भी गए। कामकाज कम हो नहीं सकते, दौड़-भाग करना ही पड़ेगी, घर-परिवार से दूर जाना ही होगा। ऐसे में समझदारी से विरह को जीना होगा। हमारे शास्त्रों में विरह की दस दशाएं बताई हैं। पहली है चिंता। अपने प्रियजन के विषय में हर समय सोचते रहने का नाम चिंता है। दूसरी स्थिति है जागरण, प्रियजन के स्मरण में निद्रा न आना। विरह की तीसरी स्थिति होती है उद्वेग। हृदय में एक हलचल, बेकली सी जब मच जाती है उसे उद्वेग कहते हैं। विरह के कारण चौथी स्थिति बनती है कृशता। अपने प्रिय की याद में बिना खाए-पीए जब दिन-रात कटते हैं और उससे जो तनाव होता है उसे कृशता कहते हैं। पाँचवीं स्थिति आती है मलिनांगता। शरीर की सुध छूट जाती है, तन पर गंदगी जम जाती है। विरह में ऐसा भी होता है। छठवीं स्थिति को आलाप कहते हैं। जब लोग शोक के आवेश में अपने-पराये को भूलकर विक्षिप्तों की तरह बातचीत करने लगते हैं। सातवीं स्थिति है उन्माद। सामान्य व्यवहार बदलकर अटपटी और विशेष चेष्टाएं जब शुरू हो जाएं तो उसे उन्माद कहते हैं। विरह की आठवीं स्थिति का नाम है व्याधी। इसमें शरीर में वेदना होती है और मन में पीड़ा। नवीं स्थिति का नाम है मोह। शरीर के अंग शिथिल हो जाएं और एक प्रकार की मूर्छा आ जाए, बिल्कुल ऐसे जैसे मृत्यु के समीप की दशा हो। दसवीं स्थिति है मृत्यु। इसका अर्थ है मृत्यु के समान अवस्था हो जाना। इन दस स्थितियों से विरह गुज़ारता है। बचने का एक सरल तरीका है कि हमारे भीतर के आस्तिक भाव को प्रबल करें, परमात्मा से जुड़ जाएं। आप महसूस करेंगे कि परमात्मा से जुड़कर विरह भी आनंद देता है, पीड़ा में भी सुख मिल जाता है। इसलिए अच्छा हो जब विरह सताए तो प्रियजन की स्मृति के साथ परमात्मा को भी याद किया जाए।

सार : प्रियजनों से दूर होने का दुख विभिन्न प्रकार से पीड़ा पहुँचाता है। विरह के प्रभाव को आनंद में बदलने के लिए अपने भीतर गोता लगाकर परमानंद से एक हो जाएँ।

व्यस्तता में भी जी सकते हैं आध्यात्मिक जीवन

स्वयं के प्रति विश्वास रखें और अपने काम के प्रति आस्था। विश्वास हमारी बाहरी क्रियाओं को सक्रिय, चौकला और थकान रहित बनाता है। आस्था हमें भीतर से अपने काम के प्रति समर्पित बना देती है। हम भीतर और बाहर को साध कर ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर पाएंगे। जितनी आस्था प्रबल होगी, काम भगवान की सेवा जैसा होगा, नतीजे में हम तनाव रहित रहेंगे। चूंकि अधिकांश मौकों पर हम अपने काम को केवल रोजगार से जोड़ लेते हैं, मात्र धन कमाना उद्देश्य रह जाता है, इस कारण काम या तो बोझ बन जाता है या उलझन का कारण। इसके लिए एक प्रयोग करिए- 24 घण्टे में कुछ समय अपने शरीर से चलते हुए भीतर उतरें फिर मन से गुजरते हुए आत्मा तक पहुंचें। 24 घण्टे हम अपने कामकाज करते हुए शरीर की भाषा पर टिके रहते हैं, लेकिन जैसे ही हम भीतर उतरेंगे एक गैर दैहिक भाषा शुरू हो जाती है, इसे कहते हैं खुद से बात करना। यहीं से होश जागने लगता है। जितना हम अंदर जाने में सक्षम होने लगेंगे उतना ही हमारे जीवन में व्यवसाय, विज्ञान और योग, ध्यान का कॉम्बिनेशन बन जाएगा। उद्योग जगत में किसी भी कंपनी के लिए कहा जाता है कि कंपनी में कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता, लेकिन उसकी कानूनी पहचान होती है। ठीक ऐसा ही हमारे साथ होता है। हमारे भीतर का आंतरिक व्यक्तित्व दिखाई नहीं देता, लेकिन उसकी स्पीचुअल आईडेंटिटी जरूर होती है। उस आध्यात्मिक पहचान या अनुभूति को बनाए रखने से बाहरी दबाव कम हो जाते हैं। जितना जरूरी लैपटॉप है उतना ही आवश्यक थोड़ी देर भ्रमरी जैसा प्राणायाम है। कार्य की योजना में जितना महत्व मीटिंग का है, वैसा ही उपयोगी अनुलोम-विलोम प्राणायाम होगा। फर्क यह है कि एक बाहर का मामला है दूसरा भीतर का। प्रतिदिन थोड़ी देर योग, ध्यान करने से हमारा संपर्क बाहर के तकनीकी तंत्र से तो रहता ही है इसी के साथ भीतरी साक्षी भाव भी जाग जाता है, गति और स्थिरता एक साथ काम करते हैं। हम जब भीतर उतरते हैं तो उस समय कोई लक्ष्य नहीं होता और चारों तरफ आनंद ही आनंद मिलेगा। ऐसे आनंद की अनुभूति के साथ जब बाहर निकलकर काम करते हैं तो लक्ष्य स्पष्ट होता है और सफलता सरल हो जाती है। इसलिए जब भी मौका लगे तो थोड़ी देर ध्यान के माध्यम से भीतर जरूर उतरें।

सार : भले ही आप कार्यस्थल पर कितने ही व्यस्त रहें
अथवा आपकी दिनचर्या कितनी ही उबाने वाली
हो, ध्यान और योग के माध्यम से आध्यात्मिक
अनुभूति को महसूस किया जा सकता है।

अमीर होकर भी आदमी इतना दुखी क्यों

इस समय कोई भी गरीब नहीं रहना चाहता। हर आदमी इतना धन कमाना चाहता है कि मूलभूत आवश्यकताएं तो पूरी हो ही जाएं और शेष धन थोड़ा मौज-मस्ती के लिए भी बचे। हर एक की मूलभूत सुविधाओं की परिभाषा अलग-अलग हो गई है। शिक्षा का भी एक बड़ा उद्देश्य धन कमाना रह गया है। अब तो लगता है पढ़ाई-लिखाई और धन-दौलत एक-दूसरे का पर्याय हो गए हैं। अच्छी शिक्षा हो और ठीक-ठाक धन न मिले तो भी दुख जाग जाता है। अच्छा करियर हो, ठीक धन भी मिल जाए तो भी दुख नहीं जाता है। किसी गरीब से पूछो कि तुम्हें क्या चाहिए तो वह कहेगा- धन! चूंकि उसके पास धन का स्वाद नहीं है इसलिए वह सुख की कुंजी धन में ही ढूंढ रहा है। धनवान से पूछो तो धन और सुख की परिभाषा थोड़ी बदली हुई मिलेगी। धन होने पर सुख होने की संभावना बढ़ ज़रूर जाती है, लेकिन सुखी हो ही जाएंगे इसकी गारंटी नहीं है। यह भी सही है कि धन कमाना चाहिए, बचाना चाहिए। पर जहां तक इसका संबंध सुख से है वहां ध्यान रखें कि धन से सुख तब तक नहीं उठा पाएंगे जब तक कि हमारे भीतर बैठा मन मस्त रहने के लिए तैयार नहीं होगा। हमारा मन लगातार हमें निराशाओं में फेंकता है। वह हमें किसी भी किस्म का उत्सव नहीं मनाने देता। इसलिए जितना दुखी एक गरीब है, उतना ही दुखी अमीर भी रहता है, क्योंकि मामला भीतर से जुड़ा है। आज एक अलग किस्म की अमीरी-गरीबी की बात की जाए। परिवार में धन-सम्पत्ति हो या न हो लेकिन गरीबी-अमीरी पृथक रूप में रहती है। दाम्पत्य में आत्म संयम और पुरुषार्थ की कमी आ जाए तो समझ लीजिए आप बहुत गरीब हैं। ज्यादातर लोग अपनी गृहस्थी में अपने चरित्र की कमजोरियों को जानबूझकर भुला देते हैं, उससे अपरिचित रहते हैं। इसी कारण इसका सीधा असर आने वाली संतानों पर पड़ता है। दुनिया की सबसे बड़ी गरीबी है अयोग्य संतानों का होना। माता-पिता का सारा किया-धरा बेकार है यदि स्वावलम्बी और परोपकारी बच्चे उनके पास नहीं हैं। नालायक औलाद की प्राप्ति घोर दरिद्रता है, लेकिन यह सारा मामला दो हाथ की ताली जैसा है। जब माता-पिता के रूप में हम अपने दायित्वों के प्रति गरीब हैं तो मूल्यों, योग्यताओं और समर्थ संतानों के मामले में कभी अमीर नहीं हो पाएंगे। इसलिए कितनी भी सांसारिक, व्यावसायिक ज़िम्मेदारी निभा रहे हों, परिवारों में संतानों के लालन-पालन के प्रति कभी भी गैर ज़िम्मेदार न रहें, वरना आजीवन गरीबी का स्वाद चखना पड़ सकता है।

सार : गरीबी-अमीरी केवल धन के मामले में ही नहीं होती वरन् दाम्पत्य, संतानों का लालन-पालन और बेहतर रिश्ते भी इसी श्रेणी में आते हैं।

धन-सम्पत्ति के फेर में कहीं अपनों को न खोना पड़े

जब हम अपने व्यवसाय की दुनिया में डूबकर काम करते हैं तब धन के नफ़ा-नुकसान को लेकर सावधान रहते हैं। नौकरी करने वाले लोग अपने परिश्रम को अपने वेतन से जोड़कर चलते हैं। व्यवसायी हर घड़ी को मुनाफे से मिलाकर ही हिसाब-किताब बनाते हैं। व्यवसायिक दुनिया में एक शब्द है हिडन डिडक्शन। इसका सीधा सा अर्थ है छिपी हुई कटौती। हम बात कर रहे हैं बाहर की दुनिया को मुट्ठी में करते समय घर के साथ अन्याय कर जाते हैं। हम अपने ही घर और उसके सदस्यों के बहुमूल्य समय, संबंध और दायित्वों की कब कटौती कर जाते हैं, पता नहीं लगता। धन और नाम जीवन में जब आता है तो केवल देकर ही नहीं जाता, बहुत कुछ ले भी जाता है। इसलिए कोशिश की जाए कि हमारा परिवार जो हमारी सफलता की कीमत चुका रहा है, या तो हम उसे लौटाएं या फिर ऐसी नौबत न आने दें कि उनके हिस्से में से अधोषित, छिपी हुई कटौती कर दी जाए। इसलिए ध्यान रखें, जब कभी अपने काम से लौटकर अपने घर में प्रवेश करें तो कुछ बातों के प्रति अतिरिक्त सावधान रहें। हम वाहन बाहर छोड़ते हैं, जूते-चप्पल घर में नहीं लाते और तीन काम घर में मौलिक होते हैं - भोजन, वस्त्र और पूजन। हर घर में इनका निजी स्वरूप है। जैसे वाहन बाहर छूटता है वैसे ही घर में प्रवेश करने के बाद बिल्कुल खाली, शून्य होकर प्रवेश करें। बाहर का कोई विचार, कोई दबाव भीतर न लाएं। यात्रा बहुत हल्की होना चाहिए। सच तो यह है कि यदि प्रेम की गागर लेकर घर के फर्श पर चलेंगे, वहां की सीढ़ियां चढ़ेंगे तो पत्थर और सीमेंट की वस्तुएं भी आपके पैरों के स्पर्श के स्पंदन को महसूस कर लेंगी। जूते-चप्पलों को अहंकार का ही प्रतीक मानें। घर आकर पैरों में ऐसी मस्ती होना चाहिए जैसे अभी-अभी नुपूर बांध लिए हों। अहंकार रहित व्यक्तित्व सब कुछ स्वीकार कर लेता है। अहंकार परिवार के लिए दैत्य के समान है और इसे पदत्राणों के साथ ही बाहर ही छोड़ दें। भोजन करते समय घर में विचारों की जुगाली हर हालत में बंद हो जाए। शांति से बनाया हुआ और भोजन के रूप में प्राप्त किया हुआ अन्न मन बनाता है। शांत मन इसी की देन है। जैसे वस्त्र बदलने पर हमारे रूप में भी थोड़ा परिवर्तन आता है, वैसे ही घर आकर एकदम सरल व्यक्तित्व हो जाएं। आपका शांत और सरल चित्त पूरे घर को सुगंधित कर देगा। अपने घर में पूजन करते समय अपने आपको संन्यास की ओर धीरे-धीरे ले जाने का प्रयास करें। संन्यासी का अर्थ है सबके लिए परमात्मा की राह पर। भगवान में भी एक गुरुत्वाकर्षण है जो हमें परिवार से जोड़ेगा। भौतिकता में यदि खिंचाव है तो घर में एक प्रेमपूर्ण भराव है। इसलिए चाहे जितना कमा लें, घर और घरवालों का हिस्सा उन्हें जरूर सम्मान और प्रेम से लौटाएं।

सार : धन-संपत्ति अवश्य अर्जित करें, लेकिन परिवार की कीमत पर नहीं। अपने पेशे अथवा व्यवसाय से जुड़ी बातों को घर के माहौल में अवरोध उत्पन्न न करने दें।

काम के नशे में दिल सो न जाए

मानवता की जो असाधारण विशेषताएं हैं, उनमें से एक है खूब परिश्रमी होना। परिश्रम के लिए स्वस्थ तथा समझ, दोनों ज़रूरी हैं। यह समय खूब परिश्रम करने का है। आजकल लोग 14 से 16 घण्टे सामान्य रूप से काम करते हैं, लेकिन ऐसा देखा गया है कि परिश्रमी दुर्बल चित्त के भी हो जाते हैं। उनमें करुणा की जगह व्याकुलता आ जाती है। उन्हें देखकर कभी-कभी लगता है कि काम के नशे में इनका दिल सो गया है। शरीर को कपड़े की तरह निचोड़ा और कूटा जा रहा है। फटे कपड़े में जिस तरह से रफू की कारीगरी होती है, आज के सफल परिश्रमियों के शरीर को भी ऐसा देखा जा सकता है। आध्यात्मिक दृष्टि यदि जीवन में हो तो परिश्रम के साथ वीरता भी आ जाएगी। अध्यात्म कहता है कि वीरता आने से सहृदयता और व्यवहार में खूबसूरती आ जाती है। यह ज़रूरी नहीं कि परिश्रमी व्यक्ति अपने लक्ष्य और शक्ति के प्रति सही हो। कई बार मेहनतकश इंसान जान ही नहीं पाता कि वह क्या और क्यों कर रहा है। मेहनत उसकी मजबूरी हो जाती है, लेकिन परिश्रम के साथ व्यक्तित्व में जब वीरता जुड़ जाए तो साहस, धैर्य, लक्ष्य और संकल्प निखर कर आ जाता है। जब हम अपने कामकाज की दुनिया में रहते हैं तो मन अपने तरीके से सक्रिय रहता है। हमें कई तरह की भूमिकाएं निभाना पड़ती हैं। कभी हम ब्राह्मण की तरह ज्ञान का कर्म कर रहे हैं तो कभी शूद्र की तरह सेवारत हैं, कभी क्षत्रिय की तरह पराक्रम में डूबे हैं तो कभी वैश्य की तरह सौदे निपटा रहे होते हैं। इस परिवर्तन से हमें सीखना चाहिए कि हमें ही हर भूमिका में अपना नेतृत्व करना है। ऐसे में केवल परिश्रम से काम नहीं चलेगा, वीरता की ज़रूरत है, लेकिन यह भी ध्यान रखें कि वीरता किसके लिए? हमेशा हमको युद्ध नहीं लड़ना है, दरअसल सबसे बड़ी वीरता है अपने मन पर जीत हासिल करना। यह मन भीतर से हमें हमारी बाहरी भूमिकाओं में परेशान करता है। यह हम पर हावी होने की कोशिश में रहता है और इसीलिए न चाहते हुए भी कुछ ऐसे काम करवा लेता है कि बाद में हमें पछतावा होता है। ज़रूरी नहीं है कि मेहनतकश इंसान का मन उसके वश में हो, लेकिन वीर व्यक्ति मन पर नियंत्रण पा लेता है और जीवन के हर क्षण पर सवार हो जाता है, सदुपयोग कर लेता है।

सार : मात्र परिश्रम करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि बुद्धि और विवेक का प्रयोग भी उतना ही आवश्यक है। साहस के साथ अपनी भूमिका निभाएँ और मेहनत का सर्वोत्तम फल प्राप्त करें।

ऐसे पेड़ पर फूल और फल भी नहीं लग पाएंगे

परिवारों में रिश्ते बनते भले ही शरीर से हैं, लेकिन रिश्तों को निभाने के लिए शरीर से अलग हटना पड़ता है। शरीर पर टिके रहते हुए रिश्ते निभाए नहीं जा सकते। भारतीय परिवारों में भी बदलते दौर में एक बड़ा परिवर्तन आया है। हमारे यहां पहले रिश्तों को महत्त्व दिया गया, शरीर को गौण रखा गया। इसीलिए भारत के परिवार के सदस्य एक-दूसरे से भावनात्मक रूप में बहुत जुड़े रहते हैं। धीरे-धीरे घर-गृहस्थी का विस्तार हुआ। बाहर की दुनिया में लोगों का समय अधिक बीतने लगा। लक्ष्य परिवार से हटकर संसार हो गया और यहीं से शरीर का महत्त्व बढ़ गया। जैसे ही हम रिश्तों में शरीर पर टिकते हैं हमारा आदमी या औरत होना भारी पड़ने लगता है, उनका अहं टकराने लगता है। बाप और बेटे का एक रिश्ता है। जब तक इसमें केवल रिश्ता काम कर रहा होता है तब तक प्रेम और सम्मान भरपूर रहेगा, लेकिन जैसे ही दोनों अपने शरीर पर टिकेंगे तो भीतर का पुरुष जाग जाता है और यहीं से फिर बाप-बेटे नहीं, दो पुरुष नज़र आने लगते हैं। ठीक यही स्थिति पति-पत्नी के बीच बन जाती है। स्त्री हो या पुरुष, जब तक रिश्ते की डोर से बंधे हैं तब तक दोनों एक-दूसरे के प्रति अत्यधिक सम्मानपूर्वक रहेंगे लेकिन इनके भीतर का आदमी या औरत जागते ही रिश्ते बोझ बन जाते हैं। यही स्थिति हर संबंध में काम करती है। माँ और बहन के नाते जो शरीर परम पवित्र होता है उसके भीतर औरत देखते ही लोग उसे व्यापार की वस्तु बना लेते हैं। पत्नी के रूप में रिश्ता एक दायित्व, एक स्नेह का होता है लेकिन यदि वो स्वयं भी अपने भीतर की स्त्री को ही जाग्रत कर ले, पुरुष भी केवल शरीर ही देखने लगे तो फिर सारी अनुभूतियां कामुकता, अपेक्षा, महत्वाकांक्षा और लेन-देन पर टिक जाती हैं। जिन रिश्तों में शरीर गौण हों और भावनाएं प्रमुख हों वहां ज़िंदगी मीठी होने लगती है। यह सही है कि शरीर के बीज से ही रिश्ते अंकुरित होते हैं, लेकिन जो लोग वापस शरीर की ओर लौटेंगे वे रिश्तों का वृक्ष नहीं बना पाएंगे। ऐसे पेड़ पर फूल और फल भी नहीं लग पाएंगे। केवल शरीर पर टिकने का अर्थ है अनघड़ पत्थर की तरह पैदा हुए और ऐसे ही मरे, लेकिन रिश्तों से जुड़ने पर ऐसा लगता है जैसे पत्थर में से मूर्ति संवारी गई। जो छुपा हुआ होता है वह निखरकर आता है। हमें अपने परिवारों में आज की व्यस्तता के दौर में यह ध्यान रखना होगा कि रिश्ते शुरू तो शरीर से हों पर धीरे-धीरे शरीर से हटकर भावना, संवेदना, ममता, सम्मान और प्रेम पर जाकर टिकें।

सार : व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान उसका शरीर है।
किन्तु भावनाओं और रिश्तों से रहित शरीर गौण
है, तथा इनसे युक्त होकर वही शरीर श्रेष्ठ जीवन
का माध्यम बन जाता है।

यह न समझे कि प्रेमी लोग झगड़ते नहीं हैं

हमेशा कहा जाता है परिवार में यदि प्रेम बचा रहा तो परिवार बच जाएगा। बहुत सारे लोग अभी भी प्रेम का अर्थ नहीं समझ पाए हैं। केवल सतह पर लें तो प्रेम का अर्थ वासना ही निकलता है। दरअसल बिना गहराई में उतरे प्रेम को नहीं जाना जा सकता। प्रेम जानने के लिए जीवन में प्रार्थना उतारनी होगी। जो लोग प्रार्थनामय होते हैं उन्हें प्रेम आसानी से समझ में आएगा। प्रार्थना का अगला चरण ही प्रेम है। इसलिए घर में एक-दूसरे से प्रार्थनापूर्ण व्यवहार किया जाए। अभी अधिकारपूर्ण व्यवहार होता है। घर का हर सदस्य एक-दूसरे के प्रति अपने अधिकार को ही जताता है। उसकी यह अपेक्षा होती है कि मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाए या मैं दूसरों के साथ वही व्यवहार करूंगा जो मेरे अधिकार में है। यह अधिकार की वृत्ति धीरे-धीरे अहंकार में बदल जाती है और जब तक अहंकार है तब तक प्रेम नहीं उभर सकता। प्रार्थना में विरह का भी महत्व है। दूरी और विरह प्रार्थना को और आत्मीय बनाती है। इसीलिए भारतीय परिवारों में यह व्यवस्था है कि बीच-बीच में कभी-कभी सदस्य एक-दूसरे से दूर हो जाएं। हमारे यहां ससुराल, ननिहाल जाने की परंपरा ही इसीलिए थी। मेल और विच्छेद का यह आवागमन प्रार्थना और प्रेम को मजबूत करता है। सदा पास में रहने से भी रिश्ते चुक जाते हैं। जब सदस्य प्रेमपूर्ण होते हैं तो वे एक-दूसरे से झगड़े, क्रोध करें तो भी प्रेम बना रहेगा। यह न समझा जाए कि प्रेमी लोग झगड़ते नहीं हैं। जमीन और आसमान में फर्क होता है लेकिन फिर भी एक चीज दोनों को मिला देती है, और वो है वर्षा। आसमान जल को वापस पृथ्वी पर लाता है। इसी तरह प्रेम से बंधे हुए परिवार के सदस्य निकट होकर झगड़े या दूर रहकर विरह में रहें प्रेम बना ही रहेगा। कहते हैं पति-पत्नी को एक-दूसरे के मित्र होना चाहिए। इस सखा भावना में यदि भक्ति-भावना जुड़ जाए तो यह विचार स्थाई रहेगा, वरना विषय और विकार बीच में आकर इस संबंध को तनावपूर्ण बनाते हैं। हमारे परिवारों में भक्ति बनी रहे और यह प्रयास इसीलिए किए जाते हैं क्योंकि भक्त प्रेमपूर्ण होता है और भक्ति परिवार के प्रेम को बचाए रखेगी। इसीलिए आप जो भी काम करते हों कितने भी व्यस्त हों अपने घरों में उस परम शक्ति के प्रति भक्ति-भाव रखें और सामूहिक रूप से उस भाव से परिवार को जोड़े। जिन परिवारों में भक्ति जितनी सामूहिक होगी वे परिवार भविष्य में उतने ही अधिक जुड़े रहेंगे।

सार : जिस परिवार में प्रेम बना रहेगा वह मुश्किल परिस्थितियों को भी पार कर जाएगा। परिवार का कोई भी नाता हो, उसे प्रार्थना, भक्ति व प्रेम के मिले-जुले भाव से सफल व संपूर्ण बनाया जा सकता है।

किसी को सलाह भी दें तो अहंकार से मुक्त होकर

जीवन में महत्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए दूसरों से सलाह लेने की ज़रूरत पड़ ही जाती है, लेकिन साथ में यह भी सवाल खड़ा हो जाता है कि सलाह ली किससे जाए। परिवार में जब सलाह लेने और देने का मौका आता है तब चुनौती और बढ़ जाती है। घर से बाहर व्यावसायिक जीवन में हम सलाहकार रख भी सकते हैं सारा मामला व्यावसायिक होता है। अतः सलाह मानना या न मानना हमारी स्वतंत्रता है, लेकिन परिवार में ऐसा नहीं हो सकता। यहां सलाह रिश्तों की पगडंडियों से चलकर आती है। इसलिए परिवार में सदस्यों की एक-दूसरे के प्रति समझ होना ज़रूरी है। कई घरों में लोगों की उम्र बीत जाती है और यह शिकायत बची रह जाती है कि एक-दूसरे को समझ ही नहीं पाए। यदि किसी को समझना है तो दो काम करें। एक, निश्चित दूरी बनाकर देखिएगा। बहुत पास से भी चीजें कभी-कभी साफ नज़र नहीं आती हैं। दूसरा काम यह करिए कि निर्णायक न बन जाएं, निरीक्षक बने रहें। घर के सदस्यों के प्रति जैसे ही हम निर्णायक बनते हैं हमारे भीतर तुलना का भाव जाग जाता है। निर्णायक बनते ही अहंकार सक्रिय हो जाता है। घर में उम्र पद, रिश्तों में विभिन्नता, भेद होने के बाद भी एक जगह सब समान होते हैं। हर सदस्य की अलग-अलग विशेषता होती है वह अपने आप में बेजोड़ होता है। कोई पत्थर की तरह दृढ़ है तो कोई बादल की तरह बहाव में है। किसी में सूरज सी तपिश है तो कोई चांद सा शीतल है। जल और अग्नि जैसा भेद भी एक ही घर के सदस्यों में मिल जाता है। इन सबके बावजूद भी जब वे अपने दाम्पत्य के प्लेटफ़ॉर्म पर हों तो उन्हें एक समान रहना होगा। नहीं तो योग्यताएं घर में ही टकराने लगेंगी। जहां प्रेम होना चाहिए वहां प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाएगी। लिहाजा समस्या आने पर सलाह देना हो, खासतौर पर घर में, तो निर्णायक नहीं निरीक्षक का भाव रखना। निरीक्षक बनते ही आप समस्या से थोड़ी दूर खड़े होंगे। यह साक्षी-भाव आपकी समझ को बढ़ाएगा और तब आप सामने वाले व्यक्ति को भी समझ पाएंगे तथा उसकी समस्या को भी जान पाएंगे। फिर सलाह भी हितकारी लगेगी, हस्तक्षेप नहीं। जब घर-परिवार के निर्णय आपसी सलाह पर टिके रहते हैं तब सफलता, असफलता का भी प्रेमपूर्ण बंटवारा हो जाता है, परिणाम उत्सव बन जाते हैं।

सार : साक्षी-भाव (दृष्टा-भाव) रखते हुए परिवार के सदस्यों की प्रवृत्ति व प्रकृति का अवलोकन करें। सलाह भी दें तो अहंकार रहित होकर। निर्णायक नहीं, सहभागी बनकर निर्वाह किया जाए।

तन के रोग धन से, पर मन के रोग भजन से दूर होंगे

यह समय स्वास्थ्य से अधिक बीमारी का है। विश्व खाद्य दिवस भी मनाया जाता है। भोजन का स्वास्थ्य से सीधा संबंध है। एक समय था कि हमारी ऋषि परम्परा में रात्रि भोज की व्यवस्था नहीं रहती थी। आज नाइट- लाइफ़ महत्वपूर्ण है। लोग नाश्ता बहुत ज़्यादा करते हैं, लंच लेते ही नहीं हैं और डिनर तबीयत से लेते हैं क्योंकि लंच के समय काम ही काम है। काम के दबाव में भोजन के तौर-तरीके ही नहीं बदले, बल्कि स्वाद भी बदल गया। देर रात किया हुआ भोजन, अगली सुबह की पूजा, योग और ध्यान को प्रभावित करेगा ही, फिर अल का प्रभाव मन पर पड़ता है। शरीर से जुड़ी बीमारियों का इलाज तो धन देकर किया जा सकता है लेकिन बीमारी जब मन को लग जाए तब ठीक होने में धन भी काम नहीं आता और मन की बीमारी लगती सभी को है। अध्यात्म कहता है कि असाध्य रोग कोई नहीं होता। हर व्याधि का इलाज है 'असाध्य' शब्द ही आध्यात्मिक जगत में मान्य नहीं है। सब कुछ साध्य है, व्यक्ति घोर पापी हो तो भी सुधर सकता है, क्योंकि सारा मामला रूपांतरण का है। जैसे ही हम मानसिक रूप से बीमार होते हैं हमारे आसपास दुख का संसार बन जाता है। यदि हम बीमारी से ठीक से परिचित न हों तो दुख का कारण दूसरों में ढूंढते हैं। जैसे ही हम यह समझते हैं कि हम पर जो दुख आया है यह दूसरों के कारण है, हम अपने आप को थोड़ा आरामदेह महसूस करते हैं लेकिन अध्यात्म कहता है कि हमारे दुखों का कारण हम ही हैं। जैसे ही यह विचार आता है हमारे अहंकार को चोट लगती है, क्योंकि यह मानना बड़ा कठिन है कि हम ही अपने आप को दुखी किए जा रहे हैं। झूठी सांत्वना दे-देकर हम इस बीमारी का इलाज करते हैं। दुख कहीं और से आ रहा है, यह दुनिया दुख ही पहुंचाती है अन्यथा हम तो अच्छे आदमी हैं यह विचार हमें ठीक नहीं होने देता। जैसे ही हम दुख का कारण स्वयं में ढूंढने लगते हैं बस यहीं से परिवर्तन का दौर शुरू हो जाता है। जो गलत मदद हम अपने आप की कर रहे थे वह सिलसिला टूट जाता है। जहां हम खुद में दोष देखने लगते हैं और उसे पकड़ लेते हैं वहीं से इलाज सही होने लगता है। हमारे दुख का कारण हम हैं-यह खोज, मान्यता, समझ है तो कठिन, पर एक बार जिंदगी में उतर जाए तो क्या दुख, क्या सुख, सभी में आनंद रहेगा।

सार : शरीर से जुड़ी बीमारियों के इलाज सभी जगह उपलब्ध हैं और धन देकर स्वस्थ हुआ जा सकता है। जब मन की बीमारी व दुख की बात हो तो केवल अध्यात्म व भीतरी अवलोकन ही सही इलाज कर सकते हैं।

सहानुभूति से अधिक मूल्य करुणा का है

जब आप दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए क्रियाशील होंगे तब सुख आपकी ओर आने के लिए सक्रिय हो जाएगा। यह सीधा सिद्धांत है-आपने दिया और आपको मिला। ईश्वर ने यह सौदा इस हाथ दे, उस हाथ ले का ही बनाया है। व्यावसायिक दुनिया में हम इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि दूसरों को सुख पहुंचाने में भी हमारा दृष्टिकोण प्रोफेशनल हो जाता है, लेकिन जब घर में प्रवेश करें तो सावधान हो जाएं। यहां वैसा न करें जैसा बाहर करते आए हैं। घर के सदस्यों में एक-दूसरे को सुख पहुंचाते समय करुणा का भाव होना चाहिए सहानुभूति का नहीं, इन दोनों में फर्क है। माँ का समूचा लालन-पालन संतान के प्रति करुणा का भाव लिए रहता है, लेकिन उसी बच्चे को जब आया संभालती है तो यह भाव सहानुभूति का हो जाता है। आप आजमा कर देख सकते हैं कि जब किसी गुरु, संत को आप अपनी व्यथा, पीड़ा सुनाएंगे तो पाएंगे कि वे निर्लिप्त होकर सुनेंगे, ऐसा लगता है वे तटस्थ हैं किन्तु उनके भीतर आपके प्रति करुणा का भाव होगा। संसार सहानुभूति के तरीके से चलता है। यदि आप दुखी हैं तो लोग सहानुभूति बताकर आपके अहंकार को संतुष्ट करेंगे। वे आपसे यह भी कहेंगे कि सचमुच आप तो बहुत अच्छे हैं दूसरे लोग ही आपके साथ बुरा कर रहे हैं। ये शब्द हमारे स्वदोष दर्शन में बाधा बन जाते हैं। इसीलिए सहानुभूति कई बार छलावा बन जाती है लेकिन करुणा का भाव आपको उस स्थिति से पार लगाने की क्रिया है। करुणा समझाती है कि यदि सचमुच संकट से उबरना है तो गहरे उतर कर स्वयं की भूमिका तलाशो और यदि दोषी खुद नजर आए तो स्वीकार करो, समाधान यहीं मिलेगा। घर-परिवार में करुणा का वातावरण रिश्तों में सफाई लाएगा, समस्या का स्थाई निदान निकलेगा। सहानुभूति में जो गर्मी होती है वह अहंकार को और तपा देती है, परन्तु करुणा की शीतलता पूरे घर के वातावरण को ठंडा, प्रेमपूर्ण कर देगी। माता-पिता बनकर, लालन-पालन में सहानुभूति और करुणा का फर्क जरूर समझें। जब संबंधों में करुणा होती है तो जीवन-रिश्ते पारदर्शी होते हैं। सहानुभूति में एक छिपाव रहता है। घर में पारदर्शिता लम्बे समय तक जुड़ाव बनाए रखेगी।

सार : घर-परिवार में अपनेपन के साथ करुणा का भाव लाने से घरेलू माहौल शांति तथा प्रेम से भर जाता है। करुणा से कल्याण करने की इच्छा पैदा होती है, जबकि सहानुभूति प्रदर्शित करने पर अहंकार संतुष्ट होता है।

कब, कितनी भावुकता? यह अध्यात्म से सीखें

यूँ तो भावुकता एक सद्गुण है। आधुनिक प्रबंधन में कहीं-कहीं यह बात कही जाती है कि व्यावसायिक जगत में भावुकता नुकसान का सौदा है। अपने पेशे में भावुक रहें या न रहें यह सवाल उठता ही रहता है। ऐसा माना जाता है कि भावुकता कई बार दृढ़ निश्चय को डगमगा देती है। बाँस यदि अधिक भावुक हो तो कर्मचारी उसका दुरुपयोग करते हैं। भावुकता लक्ष्य से समझौता कर जाती है। अध्यात्म कहता है भावुकता प्रेम का ही एक रूप है इसे न छोड़े। सवाल उठता है कि भावुकता भी बनी रहे और व्यावसायिक लक्ष्य भी सख्ती के साथ प्राप्त हो जाएं, दोनों काम एक साथ कैसे हो पाएंगे? अध्यात्म में एक अलगावपूर्ण स्थिति की चर्चा आती है। यह प्रयोग अच्छे चिकित्सक लोग करते हैं। वे यदि अपने मरीज से केवल भावुकता से जुड़ जाएं तो इलाज करने में चूक जाएंगे। बीमार व्यक्ति को डॉक्टर बिकूल अलग खड़े होकर देखता है। ऐसा माना भी जाता है कि सर्जन अपने सगे-संबंधियों की शल्य चिकित्सा करने में परहेज करते हैं। क्यों भावुकता का भावावेश आपके मूल कार्य को प्रभावित कर सकता है। इसलिए कहते हैं मरीज को देखते-सुनते समय थोड़ा अलग हो जाएं, वरना उपचार में पक्षपात हो सकता है जो नुकसानदायक रहेगा। इस उदाहरण पर विचार करिए। मरीज को लेटाकर इलाज किया जाता है। रोगी व्यक्ति लेटा रहता है यह उसकी सामान्य मुद्रा होती है। ठीक इसी तरह जब हम कोई व्यावसायिक योजना बना रहे होते हैं तो टेबल पर दस्तावेज बिछाकर उस पर झुककर काम करते हैं। कम्प्यूटर पर भी काम करते समय एक निश्चित दूरी रहती है। यह मुद्रा मनोवैज्ञानिक रूप से अलगाव की मुद्रा है। ठीक इसी प्रकार अपने कार्यक्षेत्र में अपने वरिष्ठ या अधिनस्थ लोगों से एक दूरी बनाना जरूरी है। एक निश्चित दूरी पर ही चीज़ें साफ़ दिखती हैं। ज्यादा निकटता भी धुंधलेपन का कारण बन जाती है। भावुकता भीतर रहे, लेकिन बाहर हर व्यवस्था, व्यक्ति को डॉक्टर, सर्जन की तरह दूर से देखें और व्यवस्था चलाएं। इससे आप स्वयं को मशीन की तरह होने से बचा लेंगे और भावुकता के कारण स्वयं का दूसरों द्वारा दुरुपयोग होने से रोक सकेंगे।

सार : भावनाओं के वशीभूत होकर कार्य करने से कई बार परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है। कार्यस्थल तथा अपने पेशे में भावुकता तथा एक निश्चित सीमा के अलगाव के बीच संतुलन बनाकर व्यवहार करें।

परिश्रम को तनाव और अहंकार से दूषित न करें

इस समय हर कार्य परिश्रम से जुड़ा है। कोई भी काम करें अपने परिश्रम को प्रसलतापूर्ण बनाने के लिए तीन चरणों से गुज़रे। पहली बात, अपने काम के प्रति एक झुकाव बनाएं। दूसरी बात, उसमें रुचि पैदा करें और तीसरी बात, सच्ची लगन से जुटे। झुकाव, रुचि और लगन आपके परिश्रम को बोझ बनने से बचाएंगे। परिश्रम को आदत भले ही बना लें पर नशा न बनाएं। हर व्यक्ति किसी न किसी मनोरथ की पूर्ति के लिए मेहनत करता है। मेहनत में निरंतरता जुड़ जाए तो परिणाम जल्दी मिलते हैं लेकिन परिश्रम अपने साथ एक खतरा भी लाता है। अधिक परिश्रम करने वाले व्यक्ति में दूसरों के प्रति यह भाव आ जाता है कि मैं इससे अधिक मेहनत करता हूं। बस, इस तुलना से गड़बड़ शुरू होती है। हमारे घर-परिवारों में घर चलाने के लिए सूत्र सबके पास समान नहीं होते, नेतृत्व कुछ एक-दो व्यक्तियों पर होता है। छोटे परिवारों में यह नेतृत्व पति-पत्नी में बंट जाता है। क्षेत्र अलग-अलग होने के कारण हर एक का परिश्रम उसे अहंकार से जुड़ने के लिए प्रेरित करता है। मैं सबके लिए इतना करता हूं, करती हूं इसलिए मेरे लिए भी ऐसा होना चाहिए। यहीं से संबंध बिगड़ने लगते हैं। अपने परिश्रम को केवल अपने से न जोड़े, इसमें सबकी भागीदारी रखें। अहंकाररहित बनने के लिए यह ज़रूरी है। आज परिश्रम घरों में तनाव का कारण बन गया है, क्योंकि एक व्यक्ति अहंकार से परिश्रम कर रहा है और इस कारण दूसरे सदस्य के अहंकार पर चोट पड़ रही है। परिश्रम करते समय हमारे भीतर जो भी श्रेष्ठ परिवर्तन हो उसमें अकेले ही न उतर जाएं, घर के दूसरे सदस्यों को भी शामिल करें। आपकी उच्चता में सबकी सहभागिता होना चाहिए वरना आपकी उपलब्धि दूसरे के अहंकार को ठेस पहुंचाएगी और वह आपके कितना ही निकट क्यों न हो संबंधों में तनाव का कारण बना देगी। इसीलिए पति की उपलब्धि कई बार पत्नी को खुशी नहीं देती। पत्नी को यदि कुछ श्रेष्ठ प्राप्त हो तो पति असहज हो जाता है। हमारे ऋषियों ने एक परंपरा दी है। हम जागे हैं तो सबको जगाएंगे, बस यही भाव अपने परिश्रम में रखिए कि हमने मेहनत करके कुछ पाया है तो वह सभी को बराबर मिले। यह तब होगा जब बीच में से अहंकार हट जाएगा। खूब मेहनत करें और जिनके लिए मेहनत की जा रही है वे नगण्य न हो जाएं, उनके प्रति लापरवाह न रहें। अपने परिश्रम को अपने परिवार के सदस्यों का प्रोत्साहन बनाएं और स्वीकार भी करें।

सार : किसी भी कारण से परिश्रम किया जाए, उसका अहंकार उत्पन्न न हो और दूसरों से अपनी मेहनत की तुलना न हो। अपनी मेहनत में औरों को सहभागी बनाकर उसके फल को बाँटना सीखें।

जीवनसाथी सिर्फ एक शरीर ही नहीं घैर भी बहुत कुछ है

जब भी किसी को पसंद करें पूरा ही पसंद करें। प्रेम समग्र ही होता है। हमारे पारिवारिक जीवन में हम यह भूल कर जाते हैं कि सदस्यों की कोई बात पसंद करते हैं तो कोई नापसंद। बाकी रिश्तों में यह बात धकाई जा सकती है, परन्तु पति-पत्नी के बीच जब समग्रता न हो तो वैवाहिक जीवन में नैराश्य आता है। ऐसे में अपनी-अपनी प्रभुता और शान के लिए दोनों एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो जाते हैं। तीन काम इन दोनों के रिश्तों के बीच घातक होंगे। पहला, एक-दूसरे पर प्रभुत्व न जमाएं। दोनों एक-दूसरे के जज्बात को जानें एक-दूसरे को जायदाद न मानें। दूसरी बात, आत्म सम्मान को ठेस न पहुंचाएं और तीसरी बात, निंदा न करें। इन दोनों के बीच जितना समग्र लगाव होगा उतने ही ये संतान के लालन-पालन में सहज होंगे। आर्थिक स्थिति दोनों को संभालना है। मोर्चे भले ही बदल जाएं, परन्तु घर में आते-जाते धन पर दोनों की संयुक्त रुचि, अधिकार और नियंत्रण होना चाहिए। दोनों एक-दूसरे की निगाह बनें केवल किसी एक के नेत्रों से यह यात्रा पूरी नहीं हो सकती। गृहस्थी में कई तरह की छिपी हुई चट्टानें होती हैं, कुछ लुढ़क कर खुद हमारे ऊपर गिरती हैं तो कुछ से हम स्वयं टकराते हैं। ऐसे में चकनाचूर हो जाते हैं रिश्ते। विवाह पूर्व जब पति या पत्नी का चयन होता है तो उसकी देह को लेकर कुछ विशेष पसंद होती है। शरीर के कद-काठी, रूप-रंग, चाल-ढाल, नेत्र, केश को लेकर तो स्वप्न बुने जा चुके होते हैं, लेकिन याद रखें जीवन साथी देह के अलावा और भी बहुत कुछ लेकर आता है। शरीर के हर अंग की आकृति ही नहीं, स्वभाव भी होता है और उसी के अनुसार मनुष्य आचरण करता है। नेत्र अपने पीछे गहरी अपेक्षा लेकर आते हैं। नाक क्रोध को व्यक्त करती है। आप केवल शरीर को ही पसंद नहीं कर रहे होते हैं। एक पूरे व्यवहार को जीवनसाथी के रूप में स्वीकार कर रहे होते हैं। आपके जीवन में शरीर के पीछे उसका स्वर्ग या नर्क भी चला आ रहा होता है। जीवनसाथी रूपी जिस बीज को आप बोते हैं वैसी फसल आने की तैयारी भी रखें। इसीलिए जब किसी को पसंद करें जीवन में लाएं, रिश्ते निभाएं तो समग्र ही पसंद करें क्योंकि मनुष्य जोड़ होता है और आप तोड़कर संबंध रखेंगे तो सुखी नहीं रह पाएंगे।

सार : गृहस्थ जीवन में पति और पत्नी के संबंध एक-दूसरे को स्वीकार करने की क्षमता पर निर्भर करते हैं। व्यक्ति मात्र शरीर ही नहीं होता, बल्कि उसकी सोच और आचरण भी होता है। यही संपूर्ण व्यक्तित्व है।

खुद के द्वारा खुद को देखें; समस्या सुलझेगी

आपने कभी अपनी समस्या को ऐसे देखा है जैसे वह आपकी नहीं बल्कि किसी दूसरे की समस्या है। यह प्रयोग करके देखिएगा। जीवन में समस्याओं का कोई अंत नहीं है। कुछ लोगों के जीवन में तो समस्याएं सांस के साथ, सांस की ही तरह आती हैं, जाती हैं। चौबीस घंटे में 15 मिनट का योग हमें एक साक्षी-भाव दे जाता है। खुद के द्वारा खुद ही को देखना, यही साक्षी-भाव है। बड़ी से बड़ी समस्याएं इस साक्षी-भाव से आसानी से सुलझ जाएंगी। जीवन में जब भी कोई विपरीत परिस्थिति, संघर्ष, चुनौती, परेशानी, दिक्कत और समस्या आती है तो हम उसका हिस्सा नहीं, बल्कि वही बन जाते हैं। समस्या और हम एक ही हो जाते हैं। गुस्सा आया तो वास्तव में देखा जाए तो हम और गुस्सा अलग बातें स्थितियां हैं क्योंकि जब क्रोध नहीं होता तब भी हम तो होते ही हैं। इसका सीधा मतलब है हम और क्रोध अलग-अलग ही हैं लेकिन जब गुस्सा आता है तो हम ही गुस्सा बन जाते हैं यही तादात्म्य नुकसानकारी, अशांत करने वाला होता है। अपने से अपने को अलग होने की क्रिया को यूं भी समझ सकते हैं - आप किसी नाटक में काम कर रहे हैं तब अभिनय करने वाले कलाकार भी आप हैं और दर्शक भी स्वयं बन जाएं। जब आप कुछ लिख रहे हों तो लेखक तो आप रहते ही हैं परन्तु पाठक भी स्वयं बन जाएं। ऐसा करें कि गायक भी आप हों श्रोता भी खुद बनें। इस प्रयोग से हम खुद को खुद ही देख सकेंगे। जीवन में कई स्थितियां ऐसी होती हैं जब उनमें समाना भी पड़ता है और उनसे सरकना भी पड़ता है। घर में एक-दूसरे में समाना होगा। जितना हम साक्षी-भाव विकसित करेंगे, उतना ही हम मन को केन्द्रित करने में दक्ष होंगे। अभी मन हमें लगाता-हटाता है। साक्षी-भाव आने पर हम उसके गियर बदल सकेंगे। उसकी गति के लिए क्लच, गियर और ब्रेक तीनों हमारे पास रहेंगे। फिर कैसी भी घटना जीवन में हो, शांति के साथ समाधान निकाल पाएंगे।

सार : जीवन में साक्षी भाव (दृष्टा-भाव) रख कर कार्य करेंगे तो समस्याएँ परेशान नहीं करेंगी, आप उनमें लिप्त नहीं होंगे। कर्म भी करें और स्वयं को उसी कर्म का दृष्टा भी मानें।

हम सत्य के जितना निकट होंगे ईश्वर के अस्तित्व को उतना ही अधिक जानेंगे

जैसे-जैसे युग बदला बहुत सारी चीजें परिवर्तित होती रही हैं। एक महत्वपूर्ण घटना यह भी घटी है कि लोगों ने सच और झूठ के मायने भी बदल दिए हैं। इस समय ज्यादातर लोग अपने-अपने सत्य और झूठ का दावा अपने पक्ष में और दूसरे के विपक्ष में करते हैं। एक का सत्य दूसरे के लिए झूठ बन जाता है और दूसरे के झूठ को सत्य बनाने की कोशिश की जाती है। व्यावसायिक जीवन में लोगों ने अपनी सफलता और असफलता को सत्य और झूठ से जोड़ दिया। कुछ लोगों का कहना है जिसमें अपना हित हो वही सत्य है, बाकी सब झूठ। हमारी ऋषि-मुनि जानते थे कि जैसे-जैसे समय बदलेगा परंपराएं तो बदलेगी होंगे लेकिन इसका असर मूल्यों पर भी होगा। पड़े-लिखे और तर्कशील व्यक्तियों का समय आएगा। वे मूल्यों की भी नई परिभाषाएं गढ़ेंगे, जबकि मूल्य शाश्वत हैं हमेशा एक जैसे ही रहेंगे। इसलिए ऋषि-मुनियों ने सत्य जैसे मूल्य पर एक अनूठा काम किया, जो सिर्फ भारत में ही हुआ था। हमने सत्य को मनुष्य से ज्यादा ईश्वर से जोड़ा। इसीलिए परमात्मा के लिए सत्य और सत् दोनों कहे गए। उन्हें सत् चित और आनंद कहकर पुकारा गया है। सच्चिदानंद संबोधन इसीलिए बना है। इसमें जो सत् शब्द है उसका अर्थ है अस्तित्व। जितना हम ईश्वर के अस्तित्व को जानेंगे उतना ही हम सत्य के निकट होंगे। जैसे गणित विषय सत्य है पर सत् नहीं। सपना सत् होता है सत्य नहीं। लेकिन ईश्वर सत् और सत्य दोनों हैं। अस्तित्व का सामान्य अर्थ है अनुभूति होना, उसकी महक को महसूस करना। परमात्मा के अस्तित्व से जुड़ने पर हमें अपने अस्तित्व का भान होगा। अस्तित्व केवल शरीर से संबंधित नहीं है। यह भीतर की पहुंच है। जो लोग सत् से परिचित होंगे उनके लिए सत्य भी शाश्वत होगा। ईश्वर का सत् स्वरूप हमें बताता है कि ईश्वर जरूरत नहीं, मांग होना चाहिए। जरूरत पूरी होती है और फिर खत्म हो जाती है। मांग बढ़ती है तो प्रार्थना में बदल जाती है। व्यक्ति प्रार्थना से प्रेम की ओर चलता है और प्रेमपूर्ण होते ही सच और झूठ एक नया रूप ले लेते हैं। झूठ बोलने वालों पर दबाव इसीलिए होता है कि उन्हें याद बहुत रखना पड़ता है, लेकिन सत्य हर याददाश्त से मुक्त रहता है। वह जैसा होता है वैसा ही होता है। झूठ में शुरू में सुविधा है बाद में दुविधा है। सत्य में शुरूआत में दुविधा हो सकती है, पर भविष्य में सुविधा ही रहेगी। अपने व्यावसायिक जीवन को झूठ से मुक्त कराने के लिए अपने सत्य के सत् स्वरूप को जाना जाए यानी परमात्मा से जोड़ा जाए और फिर सफलताएं अर्जित की जाएं।

सार : सत्य और असत्य के भ्रम में न पड़कर परमात्मा की अनुभूति करने पर हमें अपने अस्तित्व का भान होगा। इस अनुभूति के पश्चात् ही सत्य स्वयं उभरकर सामने आ जाएगा।

विश्राम से राहत तो मिल सकती है पर शांति नहीं

अवकाश, विश्राम, और आनंद में फ़र्क है। आजकल की व्यस्तता भरी जिंदगी में लोग अवकाश तो मना लेते हैं। सप्ताहांत (वीक एंड) का कल्बर भारत में भी पहुंच चुका है। अवकाश के दिनों में लोग विश्राम भी कर लेते हैं लेकिन आनंद नहीं मना पाते। आदमी बीमार हो तो उसे छुट्टी और आराम दोनों मिल जाते हैं पर ज़रूरी नहीं कि खुशी भी मिल जाए। खुशी और उससे ऊपर आनंद, आदमी को स्वयं अर्जित करना पड़ता है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने अवतारों में हमारे यहां उत्सव की परंपरा डाली है। खुशी को सामूहिक रूप देकर प्रसन्नता का विस्तार करना ही उत्सव है। हमें अपने भीतर लगातार उत्सव की मानसिकता को विकसित करना चाहिए। यदि हम उत्सव मनाना सीख गए तो सप्ताहभर रविवार-सा अवकाश और विश्राम होगा, कितना ही काम करेंगे थकान नहीं आएगी। अभी अवकाश का अर्थ है देह को आराम, पेंडिंग कार्य निपटाना, परिवार को समय के हिसाब से व्यवस्थित करना और अगले काम के शुरूआत की याद आने पर अजीब सी उदासी में डूब जाना। यदि ईमानदारी से देखें तो पाएंगे कि उत्सव के लिए तो स्थान बचा ही नहीं। जिस आयोजन को हम उत्सव मानते हैं दरअसल उसमें हम डूबते तो हैं ही नहीं। दूर खड़े होकर बस लोगों को अपने में और खुद को जैसे-तैसे लोगों में व्यवस्थित करते हैं। सामाजिक औपचारिकता पूरी करते-करते मन और भारी हो जाता है। हम ऐसे अवसरों पर दुखी होने को तत्पर रहते हैं और खुश रहने के लिये प्रतीक्षा करते हैं। कुछ लोग तो मानकर चलते हैं कि यदि खुश भी रहना है तो कोई दूसरा ही खुश रखेगा, अपने प्रयास आदमी करता ही नहीं। हमारा सारा गठबंधन दुख के साथ रहता है। दुखी होने में हम देर नहीं करते और सुख के लिये शर्त लगाते हैं। यदि ऐसा ऐसा हो तो मैं आनंद मना पाऊंगा। कोई मानता है कि सब मेरा कहना मानें तो मैं खुश रहूं र कोई कहता है इतनी सुविधाएं मिलें कोई बच्चों से खूब उम्मीदें लगाए बैठा है। कुछ लोगों ने तो मान रखा है कि इतना सारा धन होगा तभी हम खुश हो पाएंगे। ऐसी ही शर्तों के कारण लोग अवकाश तो मना लेते हैं पर आनंद नहीं मना पाते। आनंद एक अभ्यास की तरह है। फिर चाहे काम कर रहे हों या फुर्सत में बैठे हों किसी का जन्म हो रहा हो या मृत्यु का अवसर हो, हमारा आनंद भीतर और बाहर निरंतर बहता ही रहता है। हम स्वयं ही नहीं चाहते कि अवकाश में आनंद आए। यदि हमारी तैयारी ठीक हो जाए तो आनंद में कई अवकाश समा जाएंगे।

सार : विश्राम करने का यह अर्थ नहीं कि आप आनंद भी प्राप्त कर लेंगे। प्रसन्नता का संबंध मन की अवस्था से है, न कि शरीर के आराम से। आनंद को परिस्थिति-जन्य न मानें क्योंकि वह तो सदा-सर्वथा मौजूद है।

वर्तमान में टिकना समय का सच्चा सम्मान है

हम जहां भी रहें हमारी चेतना हमारे साथ रहे तब जो कर्म होता है वह सृजन बन जाएगा और किसी भी स्थिति हो हम अशांत नहीं रहेंगे। यदि हम हमारी चेतना के साथ नहीं हैं तो हमारे भीतर दंभ, आलस्य, प्रमाद और धूर्तता जल्दी प्रवेश करेगी। आदमी अपने मन के हाथों मजबूर होता है। यह मन उसको वहां नहीं रहने देता जहां उसको होना चाहिए। सामान्य सी बात है जब हम दफ्तर में होते हैं तब हम घर में पहुंच जाते हैं। जब हम घर में जीवनसाथी और बच्चों के साथ समय गुजार रहे होते हैं तब मन हमें बाहर की दुनिया में ले जाता है। अपनी चेतना के साथ रहने में अभ्यास करना पड़ता है। जहां हम हों वहीं हमारा मन होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं यदि हम मौजूद हैं और हमारा मन वहां नहीं है तो इसका नाम सपना है। सपना एक तरह की नींद नहीं, बेहोशी है। जैसे हम नींद में बेहोश होते हैं ऐसे ही हम जागते हुए भी बेहोश रहते हैं। इसलिए दूसरों से तो हम सवाल पूछते ही हैं 24 घंटे में कुछ समय अपने से भी सवाल करें कि क्या हम बेहोश तो नहीं। इस बेहोशी का यह अर्थ नहीं है कि धरती पर गिर गए हों आख बंद हो गई हो। यह बेहोशी चलते-फिरते, घूमते-फिरते भी आ जाती है। आदमी मौजूद है, लेकिन मन कहीं और है। ऐसे में हम जो भी काम करेंगे वह कच्चा होगा, भविष्य में परेशान करने वाला रहेगा। लोग ऐसी ही बेहोशी में परमात्मा की खोज करते हैं और ऐसी ही बेहोशी में व्यावसायिक कार्य करते हैं और बिना होश के पारिवारिक जीवन जीने लगते हैं। अब बताइए क्या कोई सपनों में रहकर भी सत्य के निकट पहुंचा है। स्वप्न केवल भाव संसार की यात्रा कराते हैं, उसमें यथार्थ जोड़ने के लिए होश में आना जरूरी है। जैसे नींद में लिए गए सपनों में हम आसमान में उड़ जाते हैं वो सब कर चुके होते हैं जो यथार्थ में होना मुश्किल है। ऐसे ही हम जागते हुए बिना चेतना के करते हैं। अभ्यास इस बात का किया जाए कि हम अपनी समूची चेतना के साथ वहां मौजूद रहें जहां हमारी देह उपस्थित रहती है। यदि हम किसी की बात सुन रहे हों या किसी से बात कर रहे हों तो मन की यात्रा को विराम दें और हर तरह से वहीं रुक जाएं, फिर देखिए काम में कभी वजून नहीं लगेगा, माहौल में तनाव महसूस नहीं होगा और सामने वाला आपके प्रति प्रेमपूर्ण रहेगा तथा आप भी दूसरों के प्रति आनंद के भाव में होंगे।

सार : वर्तमान में रहना सीखें। जिस क्षण जहाँ हों उस क्षण तन-मन से वहीं रहें। अस्थिरता मन की मूल प्रकृति है, इस तथ्य को पहचानकर अपनी संपूर्ण चेतना के साथ वर्तमान कर्म और समय में स्थिर रहें।

दो बातें: नियमों का पालन करें और परिवर्तन के लिए तैयार रहें

संसार दो तरह के नियमों से चलता है। एक, वे कायदे होते हैं जो संसार ने खुद बनाए हैं जिसकी एक शक्ल कानून के रूप में होती है। दूसरे, नियम परम शक्ति के द्वारा बनाए गए रहते हैं। इस परम शक्ति को अलग-अलग धर्म के मानने वालों ने पृथक-पृथक नाम दिए हैं। हिन्दुओं का भगवान, मुसलमानों का खुदा, ईसाइयों का जीसस इसी प्रकार के आध्यात्मिक नियमों का परिणाम है। जब हम संसार में नौकरी कर रहे हों या खुद का धंधा हो तब हम कुछ नियमों से बंधे होते हैं। नौकरी बड़े पद की हो या छोटे, नियमों से जरूर बंधी होगी। व्यवसाय करने वाले भी अपने मालिकाना अधिकार में भले ही स्वतंत्र हों लेकिन कानून से वे भी बाहर नहीं होंगे। इसीलिए अपने कामकाज को करते समय हर आदमी को कुछ सांसारिक नियम याद रखने पड़ते हैं। अब हम दुनियादारी के काम करते हुए एक प्रयोग कर सकते हैं। सांसारिक नियमों के अलावा दिव्य शक्तियों के द्वारा बनाए गए नियमों का भी स्मरण रखें। इनके कुछ नियमों में से एक नियम है 'हर उस बात का अंत जरूर होगा जिसकी कभी शुरुआत हुई होगी।' इस बात का जितनी बार हम दोहराएंगे और ठीक से समझेंगे तो हम जान जाएंगे कि दुनिया में शाश्वत कुछ भी नहीं होता, सब कुछ क्षणभंगुर है। जो है नहीं वह कभी हो भी नहीं सकता, लेकिन हम उसी को पाने की कोशिश करते हैं। जैसे, यदि सफलता आज है तो कल असफलता भी आ सकती है। हर बात की एक उम्र है। फूल खिला है तो मुरझाएगा भी। चट्टान कभी नहीं मुरझाती क्योंकि उसमें प्राण नहीं होते लेकिन जो भी जीवंत है उसका परिवर्तन स्वाभाविक है। इसलिए सांसारिक कार्यों में इस आध्यात्मिक नियम को जोड़ें। परिणाम यह होगा कि सफल होने पर हम अहंकारी नहीं रहेंगे और असावधान नहीं होंगे। असफल रहने पर हम निराश नहीं होंगे और अवसाद में नहीं डूबेंगे। शुरुआत और अंत वाले इस सिद्धांत में भविष्य के लिए ऊर्जा भी छिपी है। यह सिद्धांत आश्वस्त करता है कि रुको मत चलते रहो, थको मत करते रहो। किंतु जब जीत जाओ तो खुशी में बावले मत बनो और हार से सामना हो तो गम में डूब भी न जाओ। इस विचार को अपने व्यक्तित्व से जोड़ लें कि यदि शुरुआत है तो अंत भी लेकिन कर्म करना नहीं छोड़ना है। सारा खेल मध्य का है न आरंभ हमारे हाथ में है न अंत। यूँ समझ लें कि हमारी पैदाइश पर शत्रुतिशत दूसरों का अधिकार है। कोई भी अपनी इच्छा से जन्म नहीं ले सकता और यही हाल मृत्यु के समय भी है। जिस दिन मौत आएगी कोई रोक नहीं पाएगा। इसलिए मध्य को साधा जाए। मध्य में पूरी संभावना छिपी है। कोई भी काम करें अपने आप को मध्य से जोड़ लें। पूरी एकाग्रता और निष्ठा से काम को साधें। ऐसे में परिणाम सदैव सही आएगा।

सार : नियम चाहे प्राकृतिक हों अथवा मनुष्यों द्वारा बनाए हुए, जीवन के संचालन हेतु वे आवश्यक हैं। हर वस्तु और प्राणी का अंत स्वाभाविक है, स्थायी कुछ भी नहीं। इस नियम को जानकर कर्म करें और परिवर्तन से न घबराएँ।

कोशिश करें, अच्छे लोगों के बीच और बेहतर माहौल में रहें

व्यावहारिक जीवन में हमें कई तरह के लोग मिलते हैं। आप नौकरी कर रहे हों या व्यवसाय, जानते हुए भी कुछ गलत लोगों से संपर्क रखना पड़ता है। जब आपके पास अधिकार या विकल्प हो तो निश्चित ही आप बुरे लोगों से बचना चाहेंगे, लेकिन कभी-कभी मजबूरी हो जाती है गलत लोगों को भी जिंदगी से गुजारना पड़ता है। व्यावसायिक मजबूरी की बात छोड़ दें लेकिन यदि आपका बस चले तो हमेशा अच्छे लोगों को ढूंढते रहिए और अच्छे व्यक्ति जहां कहीं मिल जाएं, फौरन उन्हें लपक लीजिए। एक सवाल यह भी उठता है कि आखिर अच्छे लोगों को कैसे पहचाना जाए। देखिए कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके पास बैठकर शांति महसूस होती है। वे यदि बात भी कर रहे होते हैं तो मौन जैसा रहता है। उनके पास आते ही ऐसी इच्छा होती है कि जीवन को नई दृष्टि से देखा जाए। उनके भीतर से एक सुगंध निकलती है और उस महक से हमें लगता है हमारी उदासी, थकान खत्म हो गई। उनके साथ बैठने का ही दूसरा नाम सत्संग हो जाता है। ऐसे लोग जब जीवन में मिलें तो उनसे इस तरह से मिलिएगा जैसे अपने पुराने दोस्त से मिल रहे हों। कल्पना करिए बचपन का आपका कोई मित्र बरसों बाद आपको मिले, उसे देखकर जो खुशी आपको होगी, उससे मिलकर जो भाव जागेगा वैसा ही आनंद अच्छे लोगों से मिलकर हमें होगा। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि जिस जगह के आप रहने वाले हों उस जगह का कोई व्यक्ति भी मिल जाए तो दूर परदेस में हमें अच्छा लगने लगता है। इसलिए हमारी भारतीय संस्कृति में संस्कृत की महिमा गाई गई है। क्योंकि संस्कृत में संभावनाएं बढ़ जाती हैं कि आप इसे आसानी से समझ सकें। संस्कृत हमारे भीतर की अच्छाइयों को जगाती है। इसके लिए एक प्रयोग करिए दिन में एक बार अपने धर्म से संबंधित देव स्थान पर जरूर जाएं। देव स्थान में आपको महसूस होगा कि परम शक्ति आपके आह्वान पर आपके भीतर उतरने को तैयार है। परमात्मा पुकारने पर चला आता है। किसी भी देव स्थान में अच्छे लोगों की संग्रहित ऊर्जा अपना काम कर रही होती है। हमारे कार्यक्षेत्र में सब तरह के लोग होते हैं लेकिन देव स्थान और सत्संग में भले लोगों की संख्या और संभावना ज्यादा रहती है। इसलिए अपना कुछ समय देव स्थान में प्रतिदिन जरूर बिताएं और अच्छे लोग जहां से भी मिलें उनसे जुड़ जाएं या उनको अपने से जोड़ लें। अच्छाई अच्छाई को जगाती है और कोशिश करें कि हम भी दूसरों के लिए अच्छे लोगों की श्रेणी में आएँ। जैसे हम उन्हें ढूंढ रहे हैं लोग हमें ढूंढ रहे हैं।

सार : प्रयास करें कि बेहतर माहौल और अच्छे लोगों के बीच आपका ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त गुज़रे। जिस जगह और जिन लोगों के बीच आपको शांति का अहसास हो, उसे सौभाग्य समझकर स्वीकार करें।

अतीत को छोड़े, वर्तमान को पकड़े, और भविष्य से जुड़े

दो चीजें कभी नहीं रुकतीं-वक्त और उम्र। ऐसा कोई बंधन नहीं बना जो इन्हें बांध सके। वक्त गुजरता है और उम्र सरकती है। समय का सदुपयोग करना ही उम्र का सम्मान है। हर नया वर्ष समय के गुजरने का इशारा है। इस साल में प्रवेश के साथ तीन बातों का ध्यान रखा जा सकता है। अतीत को छोटे, वर्तमान को पकड़ें और भविष्य से जुड़े। अतीत की स्मृतियों का भी अपना बोझ होता है। इसी वजह से जिंदगी की चाल ही लड़खड़ा जाती है। जो अनुभव देने में काम आए बस वे ही यादें काम की हैं। वर्तमान को सदैव पकड़े, सफलता के सूत्र यहीं बिखरे रहते हैं। इन दोनों के साथ अपने आप को भविष्य से जरूर जोड़कर रखें। बिना दूरदर्शिता के आई हुई सफलता को जल्दी ही बैसाखी देना पड़ जाती है। जब हम 2014 में प्रवेश की तैयारी कर रहे होंगे तब 2015 भी हमारे लिए तैयार हो चुका होगा। हमारे ऋषि-मुनियों ने नववर्ष को ऋतुओं से जोड़ा था। आप भले ही अंग्रेजी कैलेंडर से या भारतीय तिथि से नववर्ष मनाएं, वक्त को तो बदलना ही है। महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि इस समय परिवर्तन को हमने कैसे लिया है अपने जीवन के लिए। भारतीय संस्कृति के चार ग्रंथों में समय के परिवर्तन पर सुंदर दृष्टांत आए हैं। जब भी वक्त बदलता है तो तीन संभावना बनती है। पहली, नए समय में वही चलता रहे जो चल रहा था तो आप जड़ बन जाएंगे, रुका-रुका सा जीवन। दूसरी संभावना होगी समय हमारे अनुकूल होगा। ऐसे में हम सक्रिय तो रहेंगे, परंतु आगे नहीं बढ़ सकेंगे। विकास, प्रगति से वंचित रहेंगे। तीसरी स्थिति होगी कि हमारे सामने चुनौतियां आएंगी, लगातार संघर्ष रहेगा और इसी में से हमें सफलता हासिल करनी होगी। तीसरे हालात हमें मजबूत, गहरा, सुलझा और कामयाब व्यक्तित्व प्रदान करेंगे। देखिए समय कैसे बदलता है। महाभारत में पांडव चक्रवर्ती राजा बन चुके थे। उनसे जुआ खेलने की भूल हुई। ये निर्णय ऐसा था जिसमें उन्होंने अपना सब कुछ गवां दिया। कई बार जीवन में कुछ दांव ऐसे चल जाते हैं जो नुकसान दे जाते हैं। पांडव 12 वर्ष वन में रहे। लौटने पर अपना राज्य वापस मांगा, दुर्योधन ने नहीं दिया और युद्ध हुआ। पांडवों ने कृष्ण के सहारे महाभारत का युद्ध जीता। भूल हो तो फौरन सुधारें और अपने परिश्रम से अपने अधिकार को प्राप्त करें, लेकिन महत्त्वपूर्ण यह कि कृष्ण साथ में हों। कृष्ण का अर्थ है जो समय के बदलाव को जानते हैं जो संघर्ष को विपत्ती नहीं, जीवनशैली मानते हैं जो चुनौतियों को भी अभ्यास के रूप में लेते हैं और जो हर काम को शत्रुतिशत करते हैं। आने वाले साल में हमारे पास पांडवों की तरह भूल के बाद खोने के अवसर आ सकते हैं, लेकिन नए वर्ष में कृष्ण बचाए रखिएगा। यानी एक ऐसी जीवनशैली जो बदलते समय को हमारे पक्ष में कर सके, संघर्ष, चुनौतियों के साथ।

सार : गुजरते हुए समय का महत्त्व पहचानकर अतीत को भूलकर आगे बढ़ें, वर्तमान में परिश्रम करें और भविष्य से नाता जोड़ें। समय के बदलाव को चुनौती के रूप में स्वीकार कर अपनी प्रगति को प्रशस्त करें।

तेज़ रफ़्तार रखें लेकिन गलत रास्तों के सहारे नहीं

संसार पाना हो तो दौड़ लगाना ही पड़ती है और भगवान से मिलना हो तो थोड़ा रुकना पड़ता है। इन दोनों के बीच की स्थिति है चलना। इस बात पर विचार करिए कि यात्रा को केवल बाहर ही न रखें भीतर की ओर मोड़ने की तैयारी भी हो। कितनी ही रुकावटें, कितने ही मोड़ आएं। गति रुकेगी नहीं, लेकिन गति मोड़ी जा सकती है। अपनी कामकाज की दुनिया में देखिए आप पाएंगे हम चारों ओर भीड़ से घिरे हुए हैं। कल्पना करिए कि जैसे हम मेले में जा रहे हों और हमारे आसपास लोगों की भारी भीड़ हो, जब आप सामान्य मनुष्य की तरह भीड़ में चल रहे होते हैं तब आपको याद होगा कि रेल का धका आपको अपने आप चला रहा है। इसीलिए भीड़ में चलने का एक कायदा है कि अपने को ढीला छोड़ दो। पीछे से धका आ रहा होता है, आप चाहें तो भी नहीं रुक सकते और ऐसे में किसी धके से गिर गए तो दुख की बात यह होगी कि लोग आपके ऊपर चढ़कर, हो सकता है आपको रौंदकर निकल जाएं। ऐसी दुर्घटनाएं होती ही रहती हैं। लगभग यही दृश्य जिन्दगी के साथ भी है। यहां भी हर आदमी आगे निकलना चाहता है। अब तो चलती भीड़ में ही मित्र और शत्रु बनते हैं। हो सकता है मित्र चलने में मदद करें और शत्रु रुकावट पैदा करें। हम इतने आगे बढ़ चुके होते हैं कि पीछे लौटना मुश्किल होता है। चारों तरफ भीड़ है फिर भी हम अकेले रहते हैं। ऐसे में हमारे भीतर भी निराशा, प्रतिद्वंद्विता आने लगती है। अपने को बचाने के लिए या आगे जाने के लिए हम भी भीड़ का हिस्सा हो जाते हैं। हम भी धकामुकी करने लगते हैं। न चाहते हुए और अनजाने में ही किसी को गिराने का कारण बन जाते हैं। दुनिया की दौड़ ऐसी ही होती है। दौड़ना तो है ही। ऐसे में अपने भीतर एक थ्री डी सिस्टम पैदा करिए जिसको वैराग्य कहा है। यह आध्यात्मिक प्रयोग है। थ्री डी का अर्थ होता है - डिस्क्रिमिनेशन यानी विवेक, डिस्पैशन यानी वैराग्य और डिवोशन यानी समर्पण। इन तीन वृत्तियों को अपने भीतर जगाए रखें और भीड़ के साथ चलते रहें। तब आप भीड़ का हिस्सा भी रहेंगे और भीड़ से अलग भी। जहां आपको पहुंचना है पहुंच भी जाएंगे और रुकावटें आपकी मददगार हो जाएंगी। संसार पाने के लिए लोग बाहर भागते हैं और संसार बनाने वाले को प्राप्त करने के लिए भीतर दौड़ते हैं। आप दोनों का संतुलन समझ जाएंगे कि वह कितना बाहर और कितना भीतर है। जिन्दगी में वन-वे ट्रैफिक हानिकारक है। हर मार्ग का अपना महत्व है और उसी समझ का नाम अध्यात्म है।

सार : तेज़ रफ़्तार दुनिया से कदम मिलाने की खातिर कई चाहे-अनचाहे काम करने पड़ते हैं। ऐसे में अध्यात्म के जरिए विवेक, वैराग्य और समर्पण उत्पन्न कर भौतिक संसार से भी सामंजस्य स्थापित हो सकेगा।

परमात्मा से जुड़ना है तो जीवन की जड़ों तक जाए

किसी भी काम को करने के लिए अक्ल के अलावा उत्साह भी ज़रूरी है। अक्लमंद यदि उत्साही नहीं है तो बुद्धि भी बोझ बन जाएगी। उत्साही व्यक्ति के पास यदि अक्ल नहीं है तो वह कुछ रचनात्मक नहीं कर पाएगा, लेकिन हमारा उत्साह झरने की तरह नहीं होना चाहिए जिसमें शोर है, झाग है जिसके जल में तीखापन है लेकिन गहराई नहीं है। झरने में भी मस्ती होती है, उसमें भी सौंदर्य होता है, फुहारें उसकी भी भिगोती हैं इसमें भी चट्टानों को रगड़ने की क्षमता होती है लेकिन फिर भी झरना अपने आरंभ से अंत तक गिरता ही रहता है। हमारे भीतर झील सी गहराई भी होना चाहिए। अधिकांश लोगों का जीवन उफनते तूफान की तरह है बिकूल ऐसा जैसे किसी सॉफ्ट ड्रिंक की बोतल को हिलाएं तो उसमें भरपूर झाग आता है। ढकन खोलें तो उफान बाहर भी आ जाता है और धीरे-धीरे शांत हो जाता है। आजकल लोगों का उत्साह इसी प्रकार है। बोतल में बंद रहेंगे तो शराब की माफिक होंगे, बाहर रहेंगे तो तेजाब की तरह रहेंगे, लेकिन दोनों ही स्थितियों में ठोस परिणाम नहीं होंगे। अध्यात्म इसको सतह पर जीना कहता है। जिंदगी ऐसे बहती है जैसे सतह का पानी। दुख आया तो दुखी हो गए सुख आया तो सुखी हो गए। अपना मौलिक योगदान नहीं रहता, पूरी तरह हालात से संचालित रहते हैं। जरा सा झोंका आया और सूखे पत्ते की तरह उड़ गए। गहरे जीवन का अर्थ है पेड़ की गहरी जड़ें। ऐसे पेड़ हवा के झोंकों से कम टूटा करते हैं। इसी तरह हम भी गहरे उतरकर अपनी जड़ों को टटोलें। मनुष्य के मूल में परमात्मा होता है। जितने हम गहरे उतरेंगे उतने ही परमात्मा से जुड़ जाएंगे और बाहर की बातें हमें अधिक प्रभावित नहीं कर सकेंगी। बाहर का शोरगुल हमारे भीतर अशांति नहीं लाएगा। अपने भीतर गहरे जाने के लिए ध्यान का प्रयोग बड़ा उपयोगी है। दो काम और किए जा सकते हैं जो ध्यान के अलावा हमें प्रकृति से जोड़ते हैं। सुबह उठकर सूर्य को जल अर्पित करें तथा तुलसी के पौधे के पास खड़े होकर उसे भी सींचें। अपने किसी विशिष्ट दिन में पौधारोपण करें समूची प्रकृति को तो हम अपनी बाहों में नहीं भर सकते, लेकिन कम से कम हम छोटे से प्रयोग करते हुए प्रकृति के अंदर जा सकते हैं और यहीं से प्रकृति हमें भीतर ले जाती है। जहां एक गहरी शांति होती है। तब हम सक्षम हो जाएंगे कि जरूरत पड़ने पर झरना बन जाएं और आवश्यकता पड़ने पर झील जैसे गहरे हो जाएं।

सार : ऊपर से कर्मठ व भीतर से स्निग्ध और शांत रहते हुए संसार को पार किया जाए। ध्यान-साधना का यह लाभ है कि अंदरूनी रूप से आप मजबूत और गहरी नींव वाले व्यक्ति बन जाएंगे, जिससे बाहरी क्रिया-कलाप सरल हो जाएंगे।

मन के आकर्षण - बुरी बातें, बुरे लोग, बुरी स्थिति

हर मनुष्य के पास अपना एक टेस्ट होता है, और यह आदत से अलग होता है। इसे पसंद भी नहीं कहा जा सकता है। सही शब्द है रुचि। इसमें गहराई में जाएं तो इसके कई रूप सामने आएंगे-रुचि, सुरुचि, कुरुचि और अरुचि। बिना रुचि के जीवन चल भी नहीं सकता। हम अपनी रुचि को यदि ठीक से न समझें तो वो कभी भी कुरुचि में बदल सकती है। कुरुचि को परिष्कृत करेंगे, ऊँचा उठाएंगे, सद्गुणों से जोड़ेंगे तो वह सुरुचि में बदल जाएगी और जब इसका उल्टा होगा, पतन की ओर चलेंगे, गलत चीजों के प्रति आकर्षण बढ़ेगा तो यह कुरुचि होगी। कुरुचि हमेशा जीवन को गलत मार्ग पर ले जाती है। मन को कुरुचि के प्रति ही आकर्षण है, बल्कि मन के पास इसका खजाना है। यदि कुरुचि लंबे समय तक अपना स्थान बना ले तो फिर आदमी चोरी, झूठ, ईर्ष्या और छल स्वीकार करने लगता है। आदमी की कुरुचि उसे समझाती है कि कुछ गलत नहीं होता, सिर्फ अपना हित साधो। आदमी छोटी-छोटी गलत बातों से धीरे-धीरे बड़े अपराध की ओर चलने लगता है। उसे कुरुचि समझाती है कि कोई बड़ा पाप नहीं किया है छोटा सा झूठ बोला है जरा सी चोरी की है इससे क्या फर्क पड़ता है। अब यदि मनुष्य इसी को सुरुचि में बदल दे तो सुरुचि कहती है झूठ, चोरी, अपराध न छोटा होता है, न बड़ा रहता है। वो होता ही है या नहीं होता है। इसीलिए जीवन को सुरुचि से जोड़े रखना है और मन को यह पसंद नहीं है। मन कुरुचि के माध्यम से हमें समझाता है आज पाप कर लो, कल पुण्य से धो लेंगे। इसीलिए हम देखते भी हैं कि समाज में कई लोग जिन्हें हम जानते हैं कि ये खुलकर गलत काम करते हैं और खुलकर ही भले काम भी करते हैं। दरअसल में ये इनकी सुरुचि नहीं होती, कुरुचि होती है। इसमें भी इनका गणित होता है। लगातार जीवन में सुरुचि बनी रहे तो एक और स्थिति जीवन में पैदा होती है जिसको अरुचि कहते हैं। जब व्यक्ति बीमार होता है तो उसे भोजन से अरुचि हो जाती है। लगातार आध्यात्मिक प्रयोग जैसे ध्यान आदि करने से स्वस्थ रहते हुए भी अरुचि पैदा की जा सकती है। यही से वैराग्य का जन्म होता है। यह अरुचि हमारे भीतर एक धैर्य लाती है। इसलिए जीवन के किसी भी क्षेत्र में रहें रुचि को कुरुचि होने से बचाएं, सुरुचि की ओर ले जाएं और अंत में हमारे भीतर अरुचि का जन्म हो। अरुचि अपने साथ शांति लेकर आती है।

सार : कोई व्यक्ति अपनी रुचियों को यदि सद्मार्ग की ओर मोड़ दे, तो उसकी भली आदतें उसे तीव्र प्रगति हेतु प्रेरित करेंगी। आगे चलकर सभी सुरुचि अध्यात्म के प्रभाव के चलते अरुचि में परिवर्तित होकर आनंद लाती हैं।

24 घंटे में चार बार बड़े कीमती मौके आते हैं

हम अपने आसपास एक संसार रचते हैं और उसी में हमारा जीवन चलता है। कुछ लोग अपने ही बसाए हुए संसार में सुख से रह लेते हैं और कुछ जीवनभर दुखी रहते हैं। हमें यह समझना होगा कि एक है वो संसार जो ईश्वर ने रचा है, जिसे अस्तित्व कहते हैं। हम इसी का हिस्सा हैं। इसके बाद फिर हम इसी में से अपनी दुनिया बना लेते हैं जो हमारा हिस्सा होती है। यदि हम चाहते हैं कि हम भी उसी तरह प्रसन्न रहें निर्लिप्त रहें जैसे परमात्मा रहता है, तो हमें उसकी रचना की क्रिया को समझना होगा। शास्त्रों में कथा आती है कि परमात्मा ने ये जो संसार रचा है उसके पीछे उसकी शक्ति होती है। इस शक्ति को ही परमात्मा ने आदेश दिया और वह दुनिया बनाने में जुट गई। सामान्य भाषा में इस शक्ति को हम ऊर्जा कह सकते हैं। अतः निर्माण के पीछे ऊर्जा होती है, जिसे हम आज इच्छाशक्ति भी कह सकते हैं। हमें अपने भीतर की शक्ति को अपनी शांति से जोड़ना होगा। जो लोग खूब मेहनत करके धन और सफलता अर्जित करने के साथ प्रसन्न रहना चाहते हैं उन्हें अपने भीतर की शक्ति के रूप को समझना होगा। 24 घंटे में चार बार ऐसे अवसर आते हैं जब शक्ति में परिवर्तन होता है और इसके उपयोग पर हमें ध्यान देना पड़ता है। ऋषि-मुनियों ने इसीलिए चार बार की पूजा का वर्णन किया है जिसे कर्मकांड में संध्या कहा गया है। इन चारों काल में हमारे भीतर की ऊर्जा अपना रूप और उद्देश्य बदलती है। सूर्योदय के एक घंटे पूर्व तथा बाद भी ऊर्जा का जो रूप है वह पूरी तरह से रचनात्मक होता है और उसमें सकारात्मक तत्व काम कर रहे होते हैं। हमारे उच्च उद्देश्य, ध्यान और गहन चिंतन के कार्य इस समय किए जाने चाहिए। फिर हमारी दिनचर्या आरंभ हो जाती है और दोपहर 12 बजे के आसपास एक बार फिर हमें अपनी ऊर्जा के प्रति जागना होगा, क्योंकि इस समय सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तत्व एक साथ सक्रिय हो जाते हैं। हम अच्छे और बुरे दोनों कर्मों के लिए तैयार रहते हैं। शाम के समय नकारात्मक तत्व अपने चरम पर रहते हैं। इसीलिए संध्याकाल में अच्छे-अच्छे भी थककर उदास और परेशान हो जाते हैं। रात्रि में 11 बजे के आसपास एक बार फिर नेगेटिव ऊर्जा पॉजिटिव होने की तैयारी करती है। इसलिए सोने के समय अपने आप को शांत बनाएं, थोड़ा-सा मेडिटेशन करें और सो जाएं। इन चारों समय में जो लोग ऊर्जा का सही उपयोग कर लेंगे वे अपने बनाए हुए संसार का मज़ा उठा सकेंगे।

सार : संसार में जो परम शक्ति कार्य कर रही है, उसके दो रूप हैं- सकारात्मक और नकारात्मक। दिन के अलग-अलग समय के दौरान इन रूपों की पहचान कर उनका यथोचित प्रयोग किया जाना चाहिए।

स्वयं का दुरुपयोग करने से बचें

अपने कामकाज को करते समय कई बार हम इतना डूब जाते हैं या व्यस्तता के कारण समय नहीं दे पाते और जाने अनजाने में अपने शरीर को बीमार कर लेते हैं। आजकल कुछ बीमारियाँ तो शरीर को इस प्रकार घेर लेती हैं कि आश्चर्य होता है ये कैसे हो जाती हैं। प्रबंधन के इस युग में हम एक-एक कागज़ को जब पूरे मैनेजमेंट के साथ चलाते हों अपने कार्यालय में व्यक्तियों का उपयोग पूरे प्रबंधन से करते हों तब स्वयं का दुरुपयोग करने से बचें। यँ तो आहार और विश्राम शरीर की माँग है, लेकिन व्यस्त लोग इन दोनों के ही प्रति प्रबंधन बिगाड़ लेते हैं। इसलिए एक क्रिया पर काम करते हुए भी ध्यान देते रहना चाहिए तो बीमारी आने की संभावना कम हो सकती है। हमारे शरीर के भीतर जो सिस्टम चल रहा है उसका संबंध साँस से होता है और साँस को प्राणायाम से साधा जा सकता है। पाँच तरीके से हम साँस का उपयोग करते हैं। शास्त्रों में पहले तरीके को कहा है उपान। प्राण का यह भाग शरीर में से बेकार तत्वों को बाहर फेंकता है। इस मामले में हम सावधान रहें कि जो व्यर्थ है वो समय पर विसर्जित हो जाए। प्राण यानी वायु का दूसरा काम है पचे हुए भोजन को पूरे शरीर में ठीक से पहुँचाना, इसे व्यान कहा गया है। तीसरा प्राण है जिसका नाम है समान। यह शरीर के माँसपेशीय तंत्र पर नियंत्रण रखता है, नई कोशिकाओं का निर्माण करता है और हमारे आसपास एक आभामंडल बनाता है। इसके बाद उदान नाम का प्राण हमारी नजर में होना चाहिए। यह शरीर के भीतर की महत्वपूर्ण क्रियाओं को नियंत्रित करता है। हमारे कंठ और ध्वनि का नियंत्रण भी इसी के पास है। इस प्राण के प्रति हम जितना जागरूक रहेंगे हमारी वाणी उतनी ही प्रभावशाली हो जाएगी। इसी प्रकार पाँचवा नाम है प्राण। ये वायु या जिन्हें प्राण कह लें हमारे शरीर के हर हिस्से में उपयोगी और अनुपयोगी प्रसार के लिए जिम्मेदार होते हैं। जिस तरह बाहर की दुनिया में हम परिचित होते हैं कि किस जगह कौन-सी चीज नहीं पहुँचने पर क्या नुकसान हो सकता है और कौन व्यक्ति सही मेसेंजर है इसकी पकड़ बनाए रखते हैं। ऐसे ही हमारे भीतर की दुनिया में प्राण तत्व से प्राणायाम पर पकड़ बनाए रखते हैं। फिर स्वस्थ भी रहेंगे और मस्त भी।

सार : साँस को ही प्राण कहा गया है। शास्त्रों ने साँस के उपयोग के विभिन्न प्रकार बताए हैं। इस वायु अथवा प्राण को प्राणायाम द्वारा साधा जा सकता है और शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

कैसे पाएं बाहर की सफलता और भीतर से शांति

जिज्ञासा और जागरुकता व्यावसायिक जीवन की यात्रा में यदि सही रूप में उपयोग में लाई जाए तो ये भी आगे जाकर योग्यता बन जाती है। जब हम नौकरी या व्यवसाय कर रहे होते हैं तो अपने काम के बारे में जिज्ञासा और जागरुकता ज़रूर रखते हैं। जिसके पास ये दोनों चीजें जितनी अधिक हैं उसके लिए सफलता उतनी आसान है, लेकिन शांति का इनसे कोई लेना-देना नहीं है, परंतु हमसे ज़रूर लेना-देना है। हम सफल हों तो शांति मिलनी ही चाहिए। इसलिए आध्यात्मिक खोज की यात्रा भी जारी रहना चाहिए। जैसे-जैसे आध्यात्मिक जिज्ञासा और जाग्रति हमारे भीतर आएगी, भौतिक उपलब्धियों का स्वाद बदल जाएगा। भौतिकता कहती है कर्म केन्द्रित जीवन होना चाहिए। जीवन प्रबंधन कहता है कि थोड़ी निःस्वार्थ सेवा भी करिए। संसार कहता है इन्द्रियों का उपयोग जमकर करें। अध्यात्म कहता है मोड़कर करें। जब आप संसार में सफल होंगे तो लोग कहेंगे यह व्यक्ति शानदार है, लेकिन यदि आपका आधार आध्यात्मिक होगा तो लोग कहेंगे यह इंसान परमात्मा का उपहार है। हमारे काम को लोग ईश्वर का उपहार मानेंगे। हम यदि किसी के मित्र या शत्रु भी बन जाएं तो लोग इसे उपलब्धि समझें, हमारी उपलब्धि उनके लिए गौरव बने। यह तभी हो सकता है जब व्यक्तित्व में अध्यात्म के छींटे होंगे। मेडिकल साइंस जब इलाज करता है तो उसकी नज़र इस पर होती है कि आपने कितनी सांस ली। आप सांस ले रहे हैं इसी में उसकी सफलता है। लेकिन आध्यात्मिक जीवन कहता है आपने किन अवसरों पर सांस नहीं ली, वे अवसर आपकी उपलब्धि हैं। यहां सांस रोकना एक कला है। सांस रोककर जो शून्य पैदा होता है वह संसार के शोर को गलाता है। यदि हमारे काम के परिणाम में शकल है तो अध्यात्म के आते ही उसमें शृंगार भी आ जाएगा। इसे अध्यात्म ने उत्कृष्टता कहा है। कोई भी काम बिना उत्कृष्टता के न किया जाए। हर जाति और धर्म में आदमी-औरत शादी के समय शृंगार करते हैं। इसी तरह हमारा हर कर्म शृंगारित होना चाहिए, क्योंकि वह महत्वपूर्ण है। अतः भौतिक प्रयास केवल शकल है और उसमें आध्यात्मिक आधार आने से शृंगार आ जाता है। अतः इसका भी हिसाब रखें कि कभी-कभी बिन सांस के भी जिया जाए। इसी का नाम मेडिटेशन है।

सार : भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में संतुलन बनाकर चलना श्रेष्ठ है। बाहरी जगत में सफलता के साथ ही ध्यान-धारणा का अभ्यास एक संपूर्ण जीवन का संकेत है।

दोष दूसरों में देखें या स्वयं में, उसे दूर करने का प्रयास करें

जब हमें अपने ही गुणों का अभिमान अधिक होने लगता है तब हम दूसरों में दोष भी अधिक देखने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि हम अपने को और श्रेष्ठ मानते हैं और यहीं से हमारा अभिमान बढ़ जाता है। अपने कामकाज के क्षेत्र में यदि हम वरिष्ठ स्थिति में हैं, हमारे अधिनस्थ कई लोग हों तो हमारा एक दायित्व दूसरों के दोष देखना भी होता है। दरअसल यह अधिकार इसलिए मिला है कि हम दोष देखें और उसे दूर करें। लेकिन ज्यादातर मौकों पर हम दोष देखकर सामने वाले को नीचा दिखाते हैं, अपमानित करते हैं और लगातार इस भावना से स्वयं को ऊंचा समझने लगते हैं। इस क्रिया के कारण हम स्वयं भी निर्दोष नहीं रह पाते। अपने सहयोगी और अधिनस्थों के साथ काम करते हुए परिणाम को केवल ऊपरी सतह से मत देखिएगा। यदि हम प्रतिदिन थोड़ा ध्यान का अभ्यास करते हैं तो हमारे स्वभाव में अपने भीतर जाने की वृत्ति बन जाती है। ये हमारे कर्म में काम आती है। जैसे ही घटना का परिणाम आया हम किसी भी व्यक्ति के बाहरी परिणाम पर नहीं टिकेंगे, थोड़ा उसके भीतर जाकर विश्लेषण करेंगे कि आखिर मूल में है क्या। श्रीराम के लिए तुलसीदासजी ने जितनी सुंदर बातें लिखी हैं उनमें से एक बहुत ही अच्छी टिप्पणी श्रीराम के लिए यह है कि कहते हुए न बने और हृदय में अच्छा भाव हो तो श्रीराम व्यक्ति के भाव को जानकर रीझ जाते हैं। श्रीराम के चित्त में व्यक्ति के किए हुए का ही प्रभाव नहीं रहता बल्कि वे अव्यक्त के इरादे को पकड़ते हैं। उनसे जुड़े हुए लोग यदि मन, वचन और कर्म में वचन और कर्म से चूक भी जाएं तो राम मन के भाव को पकड़ लेते हैं। मन और वचन की चूक पर ध्यान नहीं देते। यहीं से वे अपने साथियों को सुधारने में लग जाते हैं। इसलिए दूसरों के दोष को दूर करने में केवल देखने का इरादा न हो, भीतर उतरकर मन के भाव को पकड़कर दोष का निराकरण किया जाए। क्योंकि मूल रूप से सबका स्वरूप निर्दोष ही है। दोष तो एक बाहरी व्यक्ति की तरह आता है और भेजा भी जा सकता है। इसीलिए अपने से जुड़े लोगों के साथ व्यवहार करते समय केवल सतही निर्णय न लें, उनके भीतर झांकने का प्रयास करें। हरेक के भीतर एक योग्यता, प्रतिभा छिपी है। व्यक्ति की विशुद्ध अवस्था का नाम प्रतिभा है। इसे टटोलने के लिए पहले स्वयं अपने भीतर उतरने की तैयारी करें और फिर दूसरे के भीतर उतरकर प्रोत्साहन के साथ उसकी प्रतिभा को अपने कामकाज से जोड़ लें।

सार : दोष-दर्शन दूसरों में करें या स्वयं में, उद्देश्य सिर्फ यही होना चाहिए कि दोष का निवारण कैसे हो। दूसरों के दोषों की निंदा करना और स्व-दोष को छिपाकर अहंकार से प्रेरित रहना, किसी भी व्यक्ति का पतन करता है।

केवल अंत ही नहीं मूल और मार्ग भी देखें

व्यावसायिक जीवन में प्रतिस्पर्धा का बड़ा महत्व है। प्रतिस्पर्धा होगी तो निश्चित ही कोई एक जीतेगा और दूसरा हारेगा। चूंकि आज के समय में प्रतिस्पर्धा भी युद्ध की तरह है। इसलिए जीत-हार का स्वरूप भी वैसा ही हो जाता है, पर ध्यान रखिएगा आदर्श वाक्य तो यह है कि सत्य की हमेशा विजय होती है। और इसीलिए यह भ्रम पैदा हो जाता है कि जो भी जीता उसके साथ सत्य होगा। लेकिन कई बार ऐसा लगता है कि ग़लत लोग भी जीत जाते हैं। फिर यह आदर्श वाक्य सही कैसे हो सकता है। यहीं से हमको जीत के सही अर्थ समझने की दृष्टि अपने भीतर पैदा करनी होगी। पाश्चात्य संस्कृति जीत को परिणाम से जोड़ती है। उसका सारा ज़ोर ही परिणाम पर है, लेकिन हमारी भारतीय संस्कृति कहती है कि प्रयास के मूल में जाएं। आपका आरंभ कहाँ से है इस पर ध्यान दीजिए। गंगा इसलिए गंगा है क्योंकि वह गंगोत्री से निकली है। उसके उद्गम ने उसको रूप, पवित्रता और मान दिया है। सागर में डूबने से वह गंगा नहीं है। इसलिए हम अपनी जीत को ठीक से समझें। जो लोग जीते हुए नज़र आते हैं हो सकता है उनके हाथों में फूल हों और कांटे नज़र नहीं आते। लेकिन नज़र परिपक्व हो गई तो कांटों के पीछे के फूल भी दिखने लगेंगे। इसीलिए देखने की दृष्टि को बदलना होगा। इसी को बोध कहा है। बोध आते ही हम हार और जीत के मतलब जान जाएंगे। ग़लत लोगों की जीत वैसी ही होती है जैसे हिंसा तो चली गई पर प्रेम नहीं गया। हम लोग जब व्यावसायिक जीवन में काम करते हैं तो सफलता के उद्देश्य से ही करते हैं। इस संकल्प के साथ रहते हैं कि हमें जीतना ही है। फिर हमसे ग़लतियाँ भी होने लगती हैं। हो सकता है ग़लतियों के कारण हमारी विजय का मार्ग मुड़ भी जाए, लेकिन फिर ध्यान रखिएगा ग़लती के मूल में क्या है, लापरवाही या जोखिम। ग़लतियाँ दोनों स्थितियों में होती हैं। यदि आप जोखिम लेकर ग़लती कर रहे हैं तो फिर भी सुधारने की संभावना है, लेकिन आप लापरवाह बनते हुए ग़लती कर रहे हैं तो फिर विचार करिए। ऐसे लोग कुछ समय बाद जोड़-तोड़ और कुछ ग़लत मार्ग अपना लेते हैं। भूल किससे नहीं होती, सीखना सभी को पड़ता है। एक सीख यह पैदा करें कि हार और जीत को समझने में भूल न करें। इसके लिए जिस दृष्टि की ज़रूरत होती है वह मेडिटेशन से प्राप्त होती है, क्योंकि योग आत्मा का भोजन है और आत्मा हमेशा निर्दोष दृष्टि रखती है। इसलिए भारी व्यस्तता के बीच थोड़ा समय योग ज़रूर करें।

सार : किसी भी कार्य का परिणाम जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्व उस परिणाम हेतु किए गए प्रयास का भी है। केवल अंत नहीं बल्कि मूल और मार्ग भी देखें। मार्ग में ग़लतियाँ होना स्वाभाविक है और जोखिम लेकर किया गया प्रयास सुधारों के माध्यम से सफलता की ओर ले जाता है।

ऐसी प्रार्थना ईश्वर से मीटिंग और अपॉइंटमेंट दोनों है

कार्यस्थल और धर्मस्थल दोनों में ऊपरी तौर पर फ़र्क है। कार्यस्थल पर आप अपने हिस्से का कमाने जाते हैं, धर्मस्थल पर परमात्मा के अधिकार का उसे देने जाते हैं। हमारे काम का स्थान हमें धन देता है और पूजा के स्थल हमें धर्म देते हैं। कार्यस्थल पर ज़्यादा समय अशांति, कम समय शांति रहेगी तथा धर्मस्थल पर अधिक समय शांति, कम समय अशांति रहेगी। हम जब अपने ऑफ़िस, दुकान, संस्थान में कार्यरत रहते हैं तो अपने काम को समय और लक्ष्य से साध कर चलते हैं। कई लोगों से हम मिलते हैं, हमसे लोग मिलते हैं। बॉस का सामना करना, साथी कर्मचारियों से व्यवहार करना, ये सब रोज़मर्रा की समस्याएं भी होती हैं। अच्छे-बुरे लोगों से सामना होता ही रहता है। अच्छे लोग तो खैर कुछ देकर ही जाते हैं, लेकिन चालाक, छल-कपट वालों से भी सामना होगा। शांतिर लोग खुद का शांतिरपन छुपाने के लिए खुद को तराशते रहते हैं। ऐसे समय हमें भी सुरक्षा की तैयारी करनी होगी। एक प्रयोग करते रहें। अपने प्रोफ़ेशनल अनुशासन और समर्पण को ज़रा परमात्मा की ओर भी मोड़िए। आपके कार्य की समयावधि जो भी हो, उसमें से कुछ समय प्रार्थना के लिए रिज़र्व रखिए। अपने कार्यस्थल पर प्रार्थना के माध्यम से परमात्मा को याद करना हमारे पेशेवर रवैये को और समृद्ध करेगा। कामकाज में प्रार्थना ईश्वर से मीटिंग और अपॉइंटमेंट दोनों हैं। हम अपने भीतर के नकारात्मक व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाते हैं, यही व्यक्तित्व कार्यस्थल पर और अधिक सक्रिय रहता है। थोड़ी सी देर हम प्रार्थना से जुड़ते हैं हमारे भीतर जाग्रति, सतर्कता, विश्वास, जुनून, प्रतिबद्धता और आनंद बहने लगेगा। हमारे आसपास सकारात्मक ऊर्जा का वातावरण तैयार हो जाएगा। हमारे भीतर की शब्द प्रवाह की नदी भगवान की ओर बहने लगेगी। इसके बाद हम जो भी बोलेंगे वे शब्द प्रभावशाली और दूसरों के लिए स्वीकार करने योग्य होंगे। 8 – 10 घंटे काम करते हुए हम कुछ समय चाय-नाश्ता, भोजन, चर्चा में जरूर बिताते हैं। इसी में से थोड़ा वक्त प्रार्थना को दे दीजिए। प्रार्थना का रूप क्या रखेंगे ये आप अपनी स्थिति पर निर्धारित कर लें, पर प्रार्थना करें जरूर। प्रार्थना आपको शांत और गहरा करेगी। यहीं से आप प्रतिदिन विजय यात्रा करेंगे। तारीफ़ पचाना, उद्देश्य छिपाना, योजनाएं बनाना और प्रगति सही वक्त पर दिखाना, ये सब युद्ध के पहले ही विजय की घोषणा के लक्षण हैं। काम के दौरान प्रार्थना से जुड़कर ये खूबियां स्वतः आएंगी।

सार : हम अपने कार्यस्थल (दफ़्तर, दुकान, संस्थान आदि) पर सभी तरह की परिस्थितियों और व्यक्तियों का सामना करते हैं। यदि नियम से कुछ समय प्रार्थना के लिए निकालेंगे तो हमारा प्रदर्शन प्रभावशाली और सोच-विचार उन्नत हो जाएँगे।

बिना बात की उदासी के पीछे हो सकता है प्रारब्ध का हाथ

कभी-कभी ऐसा होता है कि सब कुछ करते हुए अच्छे परिणाम मिलने के बाद भी मन में उदासी आ जाती है। ऐसा लगने लगता है कि जो प्रसन्नता मिल रही है वह भी सच है या नहीं। थकान और उदासी का अंतर भी समाप्त होने लगता है। अपने आपको समझाने की इच्छा होती है कि खुश रहें। विचार करिए ऐसा क्यों होता है? हम अपने कार्यस्थल पर हों या परिवार में रहें, सबके बीच खुशी के माहौल में भी ऐसा लगता है जैसे उदासी ने धीरे से आकर पीछे से पीठ थपथपा दी या बैचेनी ने धक्का दे दिया। जैसे-तैसे सबके बीच खुद को व्यवस्थित करके समय बिताया जाता है। जब कभी ऐसा होने लगे तो कर्म के सिद्धांत को याद करें। विचार करें कि हम संसार में क्यों हैं, क्या करने आए हैं और क्या कर रहे हैं। ऋषि-मुनि कह गए हैं कि प्रारब्ध है और उसे भोगकर ही पूरा करना पड़ता है। संचित कर्मों से हम संसार बना लेते हैं और धीरे-धीरे संस्कारों का संचय या छुटकारा भी करने लगते हैं। आधुनिक प्रबंधन की भाषा में प्रारब्ध को संयोग कहते हैं। हम इस बहस में न भी पड़े तो मानकर चलें कि प्रारब्ध कभी-कभी प्रसन्नता में उदासी ला देता है। अब जब भोगना ही है तो थोड़ा कर्म के सिद्धांत पर ध्यान दें। वरना अकारण दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाएंगे। इस उदासी को टालें नहीं। ऐसी स्थिति से पल्ला न झाड़ें। जीवन में कुछ बातें अनुभव से ही समाप्त होंगी। प्रार्थना शुरू करें। सामान्य रूप से ऐसा लगता है कि प्रार्थना पूजा के समय या मंदिर जाकर ही की जाए, लेकिन कई लोगों के बीच भरे-पूरे माहौल में भीतर उदासी जागते ही तुरंत प्रार्थना शुरू कर दीजिए। याद रखें कि इसमें शिकायत का भाव न हो। यह एक भावदशा बन जाना चाहिए। हम अपना सारा रस परमात्मा की ओर मोड़ दें, क्योंकि बाहर के रस से हम भीतर नीरस हो रहे हैं। इसलिए केंद्र बिंदु बदलना है और वह परिवर्तित केंद्र परमात्मा होगा। जब हम किसी से प्रार्थना करते हैं तो इसका अर्थ है हम उससे जुड़ना चाहते हैं। शुरुआत आभार से करें। परमात्मा से कहें आपने मौका दिया है वरना मैं तो उदास होने जा ही रहा था। वैसे तो कोई मांग नहीं है, लेकिन फिर भी छोटी सी इच्छा है और वह है आपको पाना। परमात्मा से मांग करते समय परमात्मा से कम कुछ न मांगो। बस, यहीं से अच्छी खासी उदासी विदा होने लगेगी और आप अंदर-बाहर रसाभोर हो जाएंगे।

सार : इस संसार में अपने अस्तित्व पर विचार करने पर आप धीरे-धीरे प्रारब्ध और संस्कारों के संचय की भावना से परे हटकर कर्म के महत्त्व पर केन्द्रित होंगे। कर्म के साथ प्रार्थना करने पर उदासी अथवा हीनता के स्थान पर प्रसन्नता की अनुभूति होने लगेगी।

अपना रास्ता स्वयं तय करें, सहयोग लें पर निर्भर न बनें

दिनभर, महीनेभर और सालभर काम करते हुए सभी लोग अपनी उपलब्धियों का आकलन जरूर करते हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में तो तराजू के एक पलड़े में उपलब्धियां और सफलता रखी जाती हैं और दूसरे पलड़े में ज़िन्दगी के बांट पहले से ही रखे होते हैं। समझदार लोग दोनों पलड़ों के वजन पर नज़र रखते हैं और नाप-तौल के मामले में सावधान हो जाते हैं। यदि सावधानी नहीं रखी तो उपलब्धियों में दुख भी हाथ आ सकता है तथा सफलता के पीछे अशांति भी खड़ी नज़र आएगी। इसको अध्यात्म की भाषा में अमंगल शब्द कहा है। सब कुछ मिलने के बाद भी ज़िन्दगी में मंगल नहीं होता। अमंगल के घाव और पीड़ा से हम भीतर ही भीतर परेशान होते रहते हैं। चूंकि सफलता और उपलब्धियां एक मुखौटा बन जाती हैं तो आदमी को उसी में रहना पड़ता है। हमने जो भी सुख अर्जित किया है उसमें दूसरों की भूमिका प्रधान रखी है, बल्कि कई बार तो सुख दूसरों में ही खो जाते हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में दूसरों के सहयोग बिना काम हो भी नहीं सकता। बाहर से सहयोग मिलता है तो नुकसान के खतरे भी हैं। कई लोग लगातार गोपनीय तरीके से हमारे विरुद्ध षडयंत्र रच रहे होते हैं। इसीलिए सफलता की यात्रा में हम कभी-कभी भूल जाते हैं कि लोग हमारी प्रशंसा करने के लिए ही नहीं देख रहे हैं, बल्कि वे हम पर इसलिए भी नज़र रखे हुए हैं कि या तो वे हमें पराजित कर दें, वरना ठोकर लगा दें, अन्यथा हाशिए पर पटक दें। इसलिए हमें सजग रहना होगा, और यह सजगता आती है अपने भीतर उतरने से। बात वहीं आ गई कि हम कितना समय अपनी निजता के लिए देते हैं। सजगता और चालाकी का अर्थ भीतर उतरकर ही समझ में आएगा। हो सकता है लोग आपको चालाक समझेंगे, लेकिन यह आपकी सजगता होगी। अध्यात्म आपको सफलता के सूक्ष्म तरीकों से परिचित कराएगा। एक सूक्ष्म तरीका है, सफलता का सुख दूसरों के सहयोग से तो मिलेगा लेकिन दूसरों में नहीं मिलेगा। दूसरों से अपने सुख की आकांक्षा की और दुख का प्रवेश हुआ। आपका सुखी रहना पूरी तरह आप पर ही आधारित है। इसीलिए धीरे- धीरे सुख कल्पना बन जाता है और दुख अनुभव बन जाता है। कुछ समय मेडिटेशन करते हुए अपने आपसे जुड़े, आप सजग हो जाएंगे। सजग होते हुए आपके लिए सफलता का सुख एक अलग ही मायने रखेगा।

सार : व्यावसायिक क्षेत्र में दूसरों का सहयोग प्राप्त करना परम आवश्यक है क्योंकि सफलता सहयोग से ही मिलेगी। किन्तु सजग रहते हुए अपना मार्ग स्वयं बनाएँ तथा दूसरों से प्रत्याशा न करें और न ही दोष दें।

क्या मौत सबसे अनियोजित एवं अनियंत्रित घटना है!

बिना योजना बनाए कोई भी काम करना इस समय आत्महत्या करने जैसा ही है। ऐसा कहते हैं कि जब मनुष्य आत्महत्या करता है तो वह उसके जीवन का सबसे अनियोजित, अनियंत्रित कृत्य होता है। चर्चा भले ही इस प्रकार की होती है कि वह बहुत दिनों से कोशिश कर रहा था जीवन के समापन के लिए, लेकिन होता यह मूर्खतापूर्ण काम है। इसी प्रकार अपने कामकाज में बिना योजना बनाए कोई भी महत्वपूर्ण कार्य न करें। योजना बनाने में आंकड़े, भविष्य की दृष्टि और चिंतन की जरूरत होती है। चूंकि आपकी योजना पर कई लोगों का भविष्य आधारित है जो आपके हितैषी और प्रतिद्वंद्वी भी हो सकते हैं। इसलिए लोग सतत सावधान रहते हैं आपके योजना निर्माण की क्रिया को लेकर। इसलिए योजना का हर चिंतन एक रणनीति की तरह किया जाए। योजना के प्रस्तावों में प्रलोभन हो न हो, पर सम्मोहन जरूर रखिए। जैसे परमात्मा जब अवतार लेता है तो उसकी लीला सम्मोहित करती है, लोभ में नहीं डालती है। अध्यात्म कहता है अपनी भक्ति, अपने पुण्य का गोपन करते रहिए। इसे अकारण, असमय और अधिक प्रकट न होने दें। चूंकि भक्ति परमात्मा और भक्त के बीच का मामला है इसलिए गोपनीयता उसका महत्वपूर्ण भाग है। व्यावसायिक जगत में योजना बनाते समय अपने निर्णयों को छिपाने की कला आना चाहिए और शतरंज के खेल की तरह परत-दर-परत उसका प्रकाशन करने की समझ भी होना चाहिए, क्योंकि प्रतिद्वंद्वी हमेशा छिपकर और सूक्ष्म तरीके से सूचनाएं निकलवाने में माहिर होते हैं। फिर यदि प्रतिद्वंद्वी धोखेबाज़ और कुटिल वृत्ति का है तब तो विश्वास पर विश्वासघात का खेल आपके साथ कभी भी हो सकता है। अध्यात्म की दुनिया में यही काम दुर्गुण करते हैं। वे हमारे अच्छे-खासे सत्कर्मों को ठिकाने लगा देते हैं, हमारी भक्ति-भावना पर सेंध मार देते हैं। शास्त्रों ने मंत्रों का महत्व इसलिए बताया है। मंत्रों में एक तरंग होती है, उनके शब्दों में संचारी भाव होता है। यहां तक कि उनके द्वारा पैदा की गई सकारात्मक ऊर्जा हमारे आसपास के पेड़-पौधों को भी प्रभावित कर जाती है। अतः व्यावसायिक जगत में योजना बनाते समय शब्दों का उपयोग मंत्रों के भाव की तरह करिए। एक-एक आकड़ा, एक-एक पंक्ति अपनी एकाग्रता से मंत्र में बदलने का प्रयास करेगी। फिर देखिए कागज की योजना अपनी ऊर्जा के साथ व्यावसायिक जगत में प्रभावी होगी।

सार : अपने सभी व्यावसायिक और महत्वपूर्ण कार्य बिना उचित योजना बनाए न करें। बुद्धि का प्रयोग करते हुए गोपनीयता बनाए रखिए तथा दुसरो के अभिप्राय को जानने की कला सीखिए।

आज युवाओं के लिए ये सबसे बढ़िया रोल मॉडल हैं

वैसे तो हम जैसे भीतर से हैं वैसे ही बाहर से भी होना चाहिए, लेकिन कभी-कभी ग़लत लोगों को निराश करने के लिए उन्हें यह आभास कराना पड़ता है कि हम भी उन्हीं की तरह आक्रामक हो सकते हैं या हार-जीत के मापदंड उनकी दृष्टि में जो हैं, वहां तक हम भी पहुंच सकते हैं। लेकिन सावधान रहें, हमें अपनी भीतरी अच्छाई खोना नहीं है। आज जो नेतृत्व हमें अपने चारों ओर दिखता है उसमें दोहरा जीवन तज़र आता है। 50-60 वर्ष पहले तो फिर भी कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें आदर्श पुरुष मानकर लोग अपनी जीवन दिशा तय कर सकते थे। इस समय जो नेतृत्व की पायदान पर खड़े हैं, उनके पैर कीचड़ में सने हैं, हाथों से वे अपराध के पासे और कौड़ियां उछाल रहे हैं और चेहरे पर कालिख पुती हुई है। मज़ेदार बात यह है कि उनकी यही छवि लोकप्रिय होकर उन्हें हमारा कर्मधार बना रही है। ऐसे में हमें कोई ऐसा व्यक्तित्व चाहिए जो खासतौर पर युवाओं का रोल मॉडल बन सके। हनुमानजी को अब इस श्रेणी में रखना पड़ेगा। उनका संबंध किसी धर्म से न जोड़ा जाए। वे ज्ञान, कर्म और उपासना के द्वारा सफलता प्राप्त करने का आदर्श हैं। उनके चरित्र को जानने के लिए तुलसीदासजी ने एक संक्षिप्त साहित्य लिखा है - श्री हनुमानचालीसा। इसकी पंक्ति-पंक्ति हमारे भीतर नैतिक उत्तेजना भर देती है। उनके इसी रूप से परिचय कराने के लिए महापाठ नाम का एक कार्यक्रम किया जाता है। रामनवमी के दिन यदि आप थोड़ा भी चौकन्ना रहें तो संसार के इस अद्भुत व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे। इस समय अपने व्यावसायिक जीवन में सफलता प्राप्त करने वाले लोग चार बातों का नुकसान उठा रहे हैं- संबंध, समय, स्वास्थ्य और संतान। असफल लोग तो घाटे में हैं ही, पर सफल लोग भी परेशानी में हैं। जो लोग रामनवमी पर महापाठ से गुजरेंगे वे संभवतः जान सकेंगे कि सफल तो होना ही है, लेकिन हमारे संबंधों की गरिमा बनी रहे। हम समय का दुरुपयोग न करें। स्वास्थ्य को बचाते हुए श्रेष्ठ संतानें इस संसार में देना हमारा कर्तव्य है। हनुमानजी जैसे चरित्र किसी एक धर्म के लिए नहीं है, ये हर उस व्यक्ति के लिए है जो अपने जीवन प्रबंधन को व्यवहार की जगह स्वभाव से चलाना चाहता है। कौन नहीं चाहेगा सफल होगा, पर कोई भी नहीं चाहता अशांत बने रहना। तो चलिए आज हनुमानजी के साथ यह कला भी सीखें।

सार : यदि हनुमानजी को आदर्श मानकर सफलता -
प्राप्ति की दिशा में प्रयास किए जाएँ तो मधुर संबंध,
बेहतर स्वास्थ्य, श्रेष्ठ संतान व समय का महत्त्व
पहचानकर जीवन सत् के मार्ग पर तेज़ी से आगे
बढ़ेगा।

ऐसा अनुचित करना ही नहीं सहना भी बुरा है

प्रतिस्पर्धा भी एक तरह की प्रेरणा ही है। जब हम भौतिकता के क्षेत्र में सफलता की कामना से कार्य शुरू करते हैं तब ऐसा ही अभियान दूसरे भी कर रहे होते हैं। ऐसे में प्रतिस्पर्धा होना स्वाभाविक है। यदि अपने प्रयासों पर टिककर देखा जाए तो परिश्रम, योजना, जानकारी, सहयोग, टीम वर्क, मार्केटिंग इन सबकी ज़रूरत होती है। लेकिन आदमी जब जमकर काम करने पर उतारू हो जाता है और इस विचार के साथ सही- ग़लत का चिंतन छोड़ देता है कि सफलता हर हालत में हासिल करना है, तो उसकी प्रतिस्पर्धा में नफ़रत, छल, ईर्ष्या, जलन आ जाती है और यहीं से प्रतिस्पर्धा प्रतिद्वंद्विता में बदल जाती है। अपने कार्यस्थल पर काम करते हुए हम लगातार चीजों को खोजते हैं। जैसे - हानि-लाभ के आकड़ों में गलतियाँ, अच्छे काम करने वाले की खोज, अपने लिए अनुकूल स्थान को ढूँढना, लेकिन यह सब बाहर ही बाहर होता है और ऐसा करना जरूरी भी है। इसी के साथ कुछ समय योग किया जाना चाहिए। योग-यात्रा ही उलटी चलती है। जब हम बाहर सक्रिय होते हैं तो योग से जुड़कर भीतर की ओर गतिशील होने लगते हैं। हमारी बाहर की आकांक्षाएँ भीतर उतरकर अपरिग्रह में बदल जाती हैं। परिग्रह का अर्थ होता है इकट्ठा करने की तीव्र इच्छा। बाहर हम आक्रामक लगते हैं लेकिन भीतर से गजब के शांत होते हैं। 24 घंटे में कुछ समय एक प्रयोग करिए आखें बंद करें और अपने शरीर को देखें। इस अंतर को पकड़े कि शरीर अलग है और देखने वाला मैं अलग हूँ। फिर अगले चरण में अपनी कुछ इंद्रियों को देखें। जैसे- आख, नाक, कान। इनमें भी इंद्रियों और देखने वाले का भेद पैदा करें। तीसरे चरण में हमें अपनी श्वास पर नज़र रखनी होगी। हम समझ सकेंगे कि सांस लेना अलग है और हम देखने वाले उससे अलग हैं। चौथे चरण में इसी प्रकार मन को देखें। वहां देखते ही विचार, व्यक्ति, घटनाएँ दिखेंगी। यहां भी महसूस करें कि हम दर्शक हैं और मन तथा उसकी गतिविधियाँ अलग हैं। फिर थोड़ा और आगे बढ़ें। शरीर, इंद्रियाँ, सांस और मन इनको देखते-देखते जैसे ही गहरे उतरेंगे हमें महसूस होगा कि अब तक ये सब अलग थे और हम अलग थे। लेकिन, अब कुछ ऐसा महसूस होने लगेगा कि हम अलग नहीं रह पा रहे। कुछ गहरे तल पर ऐसा है जहां हम ही हैं। किसी ने उसको आत्मा, किसी ने चेतना, किसी ने अपना होना और किसी ने इसे होश कहा है। जैसे ही हम इस स्थिति में आते हैं, भले ही थोड़ी देर के लिए आएँ अपने आपको शांत पाएँगे। बाहर हम जब अपनी श्रेष्ठता के शिखर पर होंगे तो हमें भी लगेगा तथा लोग भी स्वीकार करेंगे कि शिखर पर खड़े रहने के लिए हमने पैरों में मौजे तो मखमल के पहने हैं, लेकिन हमारे पैर लोहे के हैं और हमें कोई डिगा नहीं पाएगा।

सार : जीवन में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा होना ठीक है, लेकिन इसकी आड़ में ईर्ष्या या जलन न करें। बाहर से तो हम स्थिति अनुसार प्रदर्शन करें, किन्तु भीतर से मज़बूत बने रहकर न तो अनुचित करें और न सहें।

भागने के बजाय बहना सीखें, तब ज़िंदगी का अधिक मज़ा आएगा

जो लोग ज़िन्दगी में तेजी से आगे बढ़ जाते हैं, वे लोकप्रिय तो हो जाते हैं लेकिन ऐसे लोग इस बात का विश्लेषण करना भूल जाते हैं कि उनके प्रतिद्वंद्वियों के अलावा उनके सहकर्मी, अधिनस्थ, मित्र, रिश्तेदार और खासतौर पर जीवनसाथी, संतानें अपने आप को असुरक्षित और अपेक्षित महसूस करते हैं। क्योंकि कामयाब आदमी कामयाबी की चकाचौंध में कई चीजों को देख ही नहीं पाता। ज़िन्दगी अंधकार और प्रकाश दोनों का नाम है। उजाले में तो सभी को दिखता है, पर ज़िन्दगी कुछ सच अंधेरे में ही उजागर करती है। इसलिए जब आप श्रेष्ठता की ओर हों तो आप से जुड़े लोग हीन भावना से ग्रस्त न हो जाएं। पति-पत्नी के बीच भी यह भावना पैदा हो जाती है। आपकी लोकप्रियता ऐसी हो जाती है जैसे भरी गर्मी में एयरकंडिशनर की जगह हीटर चला दिया गया हो। तन, मन, धन तीनों की गर्मी आपके व्यक्तित्व से निकलने लगती है। क्योंकि तेजी से चलने की आदत वाले लोग बहना भूल जाते हैं। ज़िन्दगी सदैव छलांग का नाम नहीं है। छलांग अपने आप में एक संतुलित चाल है। कृष्ण ने अर्जुन को महाभारत के पहले कुछ ऐसी बातें समझाई थीं जो ईशारे में ही डूब गईं गीता में जो कुछ भी व्यक्त हुआ है वह टीकाकारों की नजरों से आया है। लेकिन कभी खुद की नजर से देखिएगा तो पाएंगे कि कृष्ण ने अर्जुन से कहा था- कर्म मत छोड़ना, कर्ताभाव छोड़ देना। कर्ताभाव से जब आप कोई काम करते हैं तो उसका अर्थ है तेजी से दौड़ना और उस दौड़ने में मैं को प्रमुख रखना। जब आप कर्ता भाव हटा लेते हैं और बिना मैं के भले ही तूफान की तरह दौड़े, आपकी चाल दूसरों के लिए ठंडी लहर आश्वासन, सांत्वना और भरोसा देने वाली बन जाएगी। आप यदि अधिनस्थ हैं तो अपने बाँस को भी ऐसे सहन करेंगे जैसे परिंदों के बच्चे अपने मां-बाप को बर्दाश्त करते हैं। किसी पेड़ के पास खड़े होकर देखिएगा कि परिंदा मां- बाप जब अपने बच्चों को उड़ाना सिखाते हैं तो धका दे देते हैं और पेड़ पर बैठकर देखते हैं। परिंदा बच्चा सोचता है इस खतरे में क्या करूं। उड़कर दूर चला जाऊं या लौटकर अपने माता-पिता के पास आ जाऊं। उसे आवेश भी आता होगा कि मुझे धका दे दिया। यह घटना हमारे लिए एक सबक है। हमारे बाँस या सहकर्मी हमें इसी तरह परेशानी में धका देते रहते हैं, पर हमारी तैयारी होना चाहिए कि हर विपरीत परिस्थिति, हर परेशानी एक नई उड़ान का सबक हो। पर याद रखिए अपनी गति और उड़ान में मैं का भाव हटा दीजिएगा, फिर देखिए आपको महसूस होगा कि उड़े तो आप अकेले लेकिन आपके साथ कई लोग और भी शामिल होंगे।

सार : स्वयं को करने वाला न समझ कर काम करने पर आप उसमें लिप्त नहीं होंगे और इसलिए उसके प्रभावों से भी मुक्त रह सकते हैं। फिर आप प्रत्येक कठिन परिस्थिति को अपने से पृथक मानकर उसका प्रबंधन करने में सक्षम होंगे।

कभी-कभी अपने माता-पिता स्वयं भी बन जाए

अपने बारे में दूसरों द्वारा दी गई राय जानना अच्छा लगता है। जब दूसरे प्रशंसा कर रहे हों, तब और अच्छा लगता है। जो लोग अपने परिश्रम और संघर्ष से आगे बढ़ते हैं उन्हें एक बात और सिखाई जाती है कि दूसरों की विपरीत और आलोचनात्मक टिप्पणियों की ज्यादा चिंता न करें। जिन्हें आगे बढ़ना है वे अपने लक्ष्य की ओर ध्यान रखें, क्योंकि दूसरों के शब्द अड़ंगे बन सकते हैं। परंतु इसके साथ एक बात की सावधानी रखें, हमारे आलोचक, प्रतिद्वंद्वी, शत्रु जब हमारे बारे में राय प्रकट करें तो उनसे प्रभावित न हों, विचलित न हों, लेकिन यह जानने की कोशिश जरूर की जाए कि इसमें सच्चाई कितनी है। दूसरों द्वारा की जा रही अपनी आलोचना में सच्चाई ढूंढ लेना एक बड़ी अक्लमंदी का काम है। इसके लिए हमें अपने जीवन के कुछ पुराने लालन-पालन के क्षणों को याद कर लेना चाहिए। सामान्यतः मनुष्य के जीवन में उनके माता-पिता ने खूब समझाइश दी होती है या रोका-टोकी भी की गई होती है। पुराने दिनों को याद करें और एक आध्यात्मिक अभ्यास किया जाए। अपने माता-पिता स्वयं बन जाएं। ऐसा समझें कि अभी भी वे हमें कुछ कह रहे हैं। अपने आलोचकों की पंक्तियों में ऐसा भाव रखकर सच्चाई छी जाए। तीन काम माता-पिता बच्चे से सामान्यतः कराते हैं। भोजन, चलना और बोलना- इन तीन बातों को बच्चों ने अपने पालकों से ही सीखा है। इसमें शिक्षा, प्रेरणा और परिश्रम तीनों एक साथ चलते हैं, जबकि इन कामों के करने की क्षमता हर बच्चे में नैसर्गिक रूप से मौजूद रहती है, लेकिन फिर भी माता-पिता उसे सही रूप दे देते हैं। वह समर्थ तो था पर उसे उसकी सक्षमता का आभास माता-पिता कराते हैं। इन बातों को लगातार याद करिए, क्योंकि कुछ मौकों की स्मृतियां मनुष्य को आनंद देती हैं और कुछ अवसरों की विस्मृतियां भी राहत देती हैं। इन घटनाओं से जैसे-जैसे आप जुड़ेंगे, आपको लगेगा कि माता-पिता ने ये काम कई बार करने दिए लेकिन करने से रोका भी। हो सकता है वह रोक-टोक उस समय खराब भी लगी हो। ठीक यही भाव जैसे-जैसे मन-मस्तिष्क में परिपक्व होगा हम अपने शत्रु प्रतिद्वंद्वी और आलोचकों के प्रति वैर भाव न रखते हुए उस सच्चाई को ढूंढने लगेंगे जो उन्होंने हमारे नुकसान के लिए हमारी ओर फेंकी पर हमारे लिए बड़े काम की बन गई।

सार : उन्नति के दौरान अवरोध तथा विरोध आना स्वाभाविक है। इन दोनों के ही कारण थमें नहीं और न ही विचलित हों। बस हर आलोचना में बेहतर बनाने वाली बात ढूंढकर अपना विकास करें। आलोचक से शत्रुता न रखें, बल्कि उनकी निंदा में सच्चाई को तलाश करें।

असामान्य सफलताएं पाकर भी सामान्य ही बने रहें

जब आप किसी बड़े अभियान से जुड़ते हैं तब आपसे एकाग्रता, परिश्रम और दूरदर्शिता की उम्मीद की जाती है। इसके बिना लक्ष्य पर पहुंचना संभव भी नहीं होता है। धीरे- धीरे आप विशिष्ट व्यक्ति होने लगते हैं। बड़ा काम करेंगे तो अधिक नज़रें आपकी ओर उठेंगी। चूंकि आजकल विलंब खतरनाक है। अतः समयसीमा ज़रूर तय करिए और सीमित समय में लक्ष्य पर पहुंचने की तैयारी रखें। ऐसे में सबसे अधिक समय नष्ट करते हैं दूसरे लोग। आपका विशिष्ट होना ही आपके लिए नुकसान का कारण बन जाता है। अपने आप को सामान्य जन के रूप में बनाए रखें। इसका फायदा यह होता है कि लोग आपका समय कम नष्ट करेंगे और आप अपनी ऊर्जा का अधिक उपयोग कर पाएंगे। जितनी भीड़ आपके आसपास होगी, उतना ही आपका समय दूसरों के द्वारा भक्षण किया जाएगा। सामान्य जन न बन सकें तो कम से कम उसका स्वांग रच लें। लोग आपको नोटिस करना बंद कर देंगे और आप अपनी एकाग्रता के लिए स्वतंत्र हो जाएंगे। कभी गर्दन उठाकर बादलों द्वारा सूरज को ढंकते हुए देखिएगा। सूरज भी बादलों को मौका दे देता है अपनी खासियत छुपाने का। भले ही सूरज बादलों से ढंका हुआ हो लेकिन उसकी तेजस्विता, उसका तप कम नहीं होता। अपने आपको सहज बनाने का एक सुंदर तरीका है कि थोड़ा सा मौन साधिए। खामोशी अपने आप में एक खासियत है। कई मौके आएंगे जब वातावरण विपरीत होगा, आप सामने वाले को समझाने की स्थिति में नहीं रहेंगे, अकारण असहमति बनी होगी, परिचित और अपरिचित दोनों ही किस्म के लोग सामने होंगे। हो सकता है आप जल्द क्रोधित होने वाले लोगों के साथ गुज़र रहे हों, तो ऐसे में मौन बड़े काम का है। हालात जब विपरीत होते हैं तो कुछ लोग गैर मौजूद हो जाते हैं, स्थितियों से भागते हैं, लेकिन यदि आप मौन रखने की कला जानते हैं तो आप मौजूद रहकर भी गैर मौजूद हो पाएंगे। मौन का अर्थ केवल बाहर से चुप होना न समझें। जिस समय आप खामोश हों उस समय अपने मन को भी मौका मत दीजिए कि वह भीतर-भीतर बात करता रहे। इसे कहते हैं कीप मम से बी-लाइलेंट तक की यात्रा। मौन का एक और अर्थ है धैर्य। धैर्य बना रहा तो ऐसा नहीं होगा कि बाहर से आप शांत दिखें और भीतर से बैचेन। जब मौन घटता है तो प्रकृति भी पूरी तरह से मदद करने उतर आती है और आप पाएंगे बहुत सारी बातें अपने आप सुलझ जाएंगी।

सार : जितना बड़ा उद्देश्य होगा, उसे साधने का मार्ग भी उतनी ही अधिक मांग करेगा। ऐसे में कुछ गुण अनिवार्य रूप से आपमें मौजूद होने चाहिए। मौन रहना ऐसा ही एक गुण है, जिसके द्वारा आप अपनी विशिष्टता अथवा प्रसिद्धि को पचाकर सामान्य रूप से रह सकते हैं।

योग्यता और क्षमता फैलाएंगे नहीं तो वे फ़ेल हो जाएंगी

विकास और प्रगति जैसे शब्द जब व्यावसायिक जीवन से जुड़ते हैं तो इनमें एक लक्ष्य निर्धारित होता है। जब ये आध्यात्मिक जीवन से जुड़ते हैं तो इसमें अंत नहीं होता, आरंभ और यात्रा ही होती है। आजकल तो प्रोफेशनल जीवन में भी यही समझाया जा रहा है कि लक्ष्य पर पहुंचकर अंत मत समझ लीजिए। हर दिन शिखर नया हो जाता है। हर दिन नए लक्ष्य गढ़ना पड़ेंगे। सफलता की बगिया रोज़ नई सुगंध मांगती है। इसलिए रुक मत जाइए, चलते रहिए चलते रहिए। व्यावसायिक जीवन में एक बड़ी रुकावट है होम सिन्ड्रोम अर्थात् आदमी अपने सुविधा के दायरे से बाहर निकलना ही नहीं चाहता। यहीं से उसका विकास रुक जाता है। शास्त्रों में एक बड़ी सुंदर बात लिखी है - यस्यास्ति सर्वत्र गतिस्स कस्मात्त्वदेशरागेण हि याति खेदम्। तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवारणः क्षारं जलं के पुरुषाः पिबन्ति॥ जिसकी सर्वत्र गति है, वह स्वदेशानुराग का कष्ट क्यों सहेगा? मंद बुद्धि वाले पुरुष यह कहकर खारा जल पीते हैं कि यह मेरे पितृकुल का कुआँ है। इन पंक्तियों में एक शब्द आया है क्षारं जलं के पुरुषाः पिबन्ति। हम लोग भी यही कर जाते हैं। ज़रा कहीं बाहर जाना पड़े अपने घर-परिवार से हटना पड़े तो आदमी कई कारण गिनाने लगता है। ऐसा दो कारणों से किया जाता है। या तो कुछ दायित्व ऐसे हों, जिनका निवारण स्वयं करना हो तब तो बात समझ में आती है। किसी के साथ बूढ़े माता-पिता हैं, किसी के साथ अन्य पारिवारिक समस्याएं हैं, दायित्व आपको रोक ले वह तो फिर भी ठीक है, लेकिन लोग सुविधाओं के कारण सरकना नहीं चाहते। बुद्ध जयंती पर बुद्ध को इस बात के लिए याद किया जाए कि उन्होंने एक अनूठा आशीर्वाद कुछ लोगों को दिया था। संसारभर में दिए गए आशीर्वादों में यह अलग ही था। कुछ लोग उनके पास आए तो बुद्ध ने कहा- यहीं बस जाओ। फिर कुछ समय बाद एक दूसरा वर्ग उनके पास आया, बुद्ध का आशीर्वाद पलट गया। उन्होंने कहा - फैल जाओ, बिखर जाओ। बुद्ध के शिष्यों को आश्चर्य हुआ कि अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग आशीर्वाद क्यों? बुद्ध बोले- पहले लोग दुष्टवृत्ति के थे इसलिए यहीं बसने का आशीर्वाद दिया, जिससे बुराई फैले नहीं। दूसरा वर्ग भले लोगों का था तो आशीर्वाद भी बदला, क्योंकि भलाई फैलना चाहिए। आज हम भी इस बात पर विचार करें कि जब भी अवसर आए तो सुविधाओं के क्षेत्र से बाहर निकलकर खूब परिश्रम करिए, विकास करिए और अपने सद्गुणों को फैलाइए।

सार : अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं का दायरा अधिक से अधिक फैलाएँ। स्वयं को संकुचित, सीमित रखकर आप अपनी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध कर लेते हैं।

बूढ़े और अनुभवी लोग कहीं भी हों बेकार नहीं होंगे

उपयोगिता के इस समय में सभी को साबित करना पड़ता है कि वे उपयोगी हैं। अब तो रिश्ते संवेदनाओं से नहीं चलते, उपयोगिता से चल रहे हैं। इसके दो पक्ष हैं। पहला यह कि आप अपनी उपयोगिता साबित करिए और इसके लिए लगातार उपयोगी बने रहिए। लोग ऐसा कर भी रहे हैं। परिश्रम और अपडेट रहना इसमें बड़ा काम आता है। दूसरा पक्ष यह है कि किसी के भीतर छिपी उपयोगिता को ढूँढ़ लेना। हो सकता है कुछ लोग अपनी उपयोगिता का प्रदर्शन न कर पाएं। ऐसे समय में बुद्धिमानी यह होगी कि हम सामने वाले की उपयोगिता को उसके भीतर से उजागर कर दें। शास्त्रों में एक बात लिखी है- अहो खलस्यापि महोपयोगः स्नेहदुहो यत्परिशीलनेन। आकर्णमापूरितपात्रमेताः क्षीर क्षरन्त्यक्षतमेव गावः॥ कैसा आश्चर्य है कि तेल-रहित खली का भी बड़ा उपयोग होता है, क्योंकि उससे पूरित पात्र को देखते ही गायें बिना किसी आघात के बर्तन भर-भर कर दूध देती हैं। खली में से तेल निकाल लिया गया, तो सामान्य स्थिति यह है कि खली किसी काम की नहीं रही, लेकिन गायें उसको खा लें तो भरपूर दूध देती हैं। ऐसे ही व्यावसायिक संस्थानों में लंबे समय सेवा करने के बाद कुछ वरिष्ठ लोग उम्र के कारण, अनुभव के कारण, हाशिए पर पटक दिए जाते हैं। सालों उन्होंने काम किया, व्यवस्था ने जमकर उनका तेल निकाला और अब वे खली की तरह किसी काम के नहीं रहे, लेकिन चतुर मैनेजमेंट उस खली की उपयोगिता को देख लेता है जो अभी भी गाय के दूध के लिए काम आती है। बूढ़े लोग, अनुभवी व्यक्ति कहीं भी हों, बेकार नहीं होंगे। हमें उनके भीतर की उपयोगिता निकालने की कला आना चाहिए। तैराकी सिखाने वाला एक बूढ़ा उस्ताद था। उसकी आदत थी कि जब भी कोई तैराक समुंदर की तमाम दूरियों को पार करके किनारे पर आता, उस समय उस्ताद चिल्लाकर कहता-सावधान! एक दिन एक तैराक ने उससे पूछा जब पूरा दरिया पार कर गए तब कुछ नहीं कहा और अब किनारे पर चिल्लाकर सावधान कर रहे हो, ऐसा क्यों? उस्ताद बोला, मेरा अनुभव है कि लोग किनारे पर ही डूब जाते हैं। बीच दरिया में तो तुम्हारे सामने लहरों की गहराई की चुनौती थी। जब संघर्ष होता है समय होता है तब आदमी सावधान रहता है, लेकिन सफलता के किनारे पर आकर बड़े-बड़े असावधान हो जाते हैं। इसलिए हर एक की अपनी उपयोगिता है। कब, कौन, कैसे काम में लिया जाए, यही समझदारी है।

सार : उपयोगी व्यक्तियों को पहचानकर उनका सार्थक व समुचित लाभ लिया जा सकता है। जिस व्यक्ति में जो गुण विद्यमान है, उसके अनुसार कार्य निर्धारित कर लक्ष्य सिद्ध करना ही समझदारी का परिचायक है।

दिल, दिमाग और देह का सही उपयोग सीखें अध्यात्म से

कुछ लोग अभी भी अपने घर और दफ्तर में भेद नहीं बना पाते। घर में होते हैं तो भी धंधे-पानी के काम चालू रहते हैं। कार्यस्थल पर होते हैं तो घर-परिवार की झंझटें पीछा नहीं छोड़ती। न यहां चैन, न वहां शांति। इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण है। परिस्थिति बदलती है, मनोस्थिति नहीं बदलती, जबकि हमें परिस्थिति बदलते ही मनोस्थिति पर भी काम करना चाहिए। इसके लिए दफ्तर में घुसते ही जिस तरह बाहरी सिस्टम से हम परिचित होते हैं, जैसे हर विभाग की अपनी जिम्मेदारी होती है, वैसे ही अपने भीतरी तंत्र को भी क्रियाशील कर लीजिए। बराबर सजग रहिए कि कहां बुद्धि का उपयोग करना है और कहां मन का। इसके लिए एक जागरूकता चाहिए। यह जागरूकता घर से निकलने के पहले योग-प्राणायाम से पैदा कर लें। ज़रूरत पड़े तो अपने कार्यालय में बीच-बीच में इसके उपयोग करते रहें। मन का सारा प्रवाह इंद्रियों की ओर रहता है। इंद्रियों के भोग-विलास में मन भी रम जाता है। बुद्धि इनके पीछे चल देती है। उदाहरण के तौर पर रसीला स्वादिष्ट भोजन करते समय इंद्रियां पूरी तरह उनमें डूबी रहती हैं, बुद्धि भी उसमें रम जाती है, जबकि बुद्धि का काम यह था कि वह चेतावनी दे कि यह रस पेट में जाकर नुकसान पहुंचा सकता है। मन तो खानपान में रम ही गया था, बुद्धि को और ले डूबा। मन को भटकना खूब पसंद है। भटकते-भटकते वह भोगों का स्मरण करता है। यहीं से वह उसे क्रिया में बदलने की कोशिश करता है। हमें इस बात का लगातार ध्यान रखना होगा कि जब हम बुद्धि का काम कर रहे हों तब मन व्यवधान न पहुंचाए, वरना एकाग्रता चली जाएगी और परिणाम ग़लत होगा। मनुष्य की जैसी संगति होती है, मन उसी तरह का रूप लेने लगता है। मन की शक्ति एक ही होती है, लेकिन समझ, अनुभव और जागरूकता के कारण उसका रूप बदल जाता है। अच्छी संगति होगी तो मन, बुद्धि के सदुपयोग में बाधा नहीं पहुंचाएगा और हम श्रेष्ठ कार्य कर जाएंगे, वरना कैसा भी काम करते समय मन अपनी हरकतें कर जाएगा। अपने सहकर्मियों को देखकर काम जाग जाना, अपने साथियों की सफलता देखकर ईर्ष्या करना, अपने बाँस के प्रति षडयंत्र में रमना और अपने अधिनस्थों को बेकार में प्रताड़ित करना, यह सब मन के प्रिय खेल हैं। करता मन है और बदनाम बुद्धि हो जाती है। यह अंतर केवल सजगता से आएगा, जिसका जन्म योग से होता है।

सार : बुद्धि और मन में भेद करके इंद्रियों की प्रकृति को पहचानना और जो कर्म हमारे अनुरूप हो उसे विवेक के अनुसार करना, यही सर्वथा उचित है। बुद्धि को सदा मन के ऊपर रखें जिससे बाद में पछतावा न हो।

आपकी मनःस्थिति भी परिस्थितियों को बनाती और बदलती है

अच्छे और बुरे, दोनों ही प्रकार के विचारों को बनाने की शक्ति हर मनुष्य में होती है। सही और ग़लत का अंतर अधिकांश लोगों को मालूम भी होता है, लेकिन फिर भी रुचि हावी हो जाती है और वे इस फ़र्क के महत्त्व को भूल जाते हैं। जब हम अपने कार्यस्थल पर होते हैं तो कई बार हमें महसूस होता है कि जो काम हमें करना चाहिए या जिस नियम से हम बंधे हैं उसका पालन हम नहीं करते। पछतावा भी होता है, फिर भी ग़लत करते ही जाते हैं। जिस प्रकार हमारे दफ़्तरों की व्यवस्था में कुछ विभाग होते हैं, विभाग प्रमुख होते हैं और सबका अपना-अपना अलग दायित्व होता है। कुछ लोग निगरानी करने के लिए रखे गए होते हैं, किसी के पास नेतृत्व रहता है और कोई केवल क्रियान्वयन करता है। आप किसी भी भूमिका में हों, मामला दायित्व बोध का है, ज़िम्मेदारी का अहसास व्यावसायिक जीवन में गहने की तरह है। चलिए इसी बात को आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हैं। आपके आध्यात्मिक होने का मतलब है जिस तरह से व्यवस्था बाहर है, वैसी ही व्यवस्था भीतर भी होती है। बाहर की व्यवस्था से परिस्थिति बदलती है और भीतर की व्यवस्था को जान लेने से मनोस्थिति बदल जाती है। जिसका मन स्थिति पर नियंत्रण है वह बाहर की स्थिति पर अधिक लगाम रख सकेगा। थोड़ा भीतर की व्यवस्था को जानें। शरीर, मन और बुद्धि इन तीनों पर हमें अलग-अलग स्थितियों में नियंत्रण करना आना चाहिए। मन अपने वेग, गति के लिए जाना जाता है और इसीलिए वह इंद्रियों पर सवार रहता है। इंद्रियां सदैव सुख चाहती हैं, भोग चाहती हैं। मन और इंद्रियां मिली नहीं कि इनकी तेज़ गति के पीछे बुद्धि भी बहने लगती है। उदाहरण के तौर पर मीठी वस्तु भोग के लिए तश्तरी में आई, मन का आमंत्रण था, इंद्रियां तो स्वाद लेने को तैयार ही थीं। ऐसी स्थिति में बुद्धि का काम यह था कि बहुत अधिक मिठाई न खा ली जाए, क्योंकि स्वाद में मीठी है, पर पेट में जाकर परिणाम दूसरा हो सकता है। जहां बुद्धि को चेतावनी देकर रोकना था, वह मन के साथ मिल जाती है और मन पहले से मिठाई के साथ घुला हुआ था। यहीं से व्यक्तित्व में भटकाव आता है। मिठाई वाली बात तो एक उदाहरण है। ऐसा कई अलग-अलग परिस्थितियों और व्यक्तियों के साथ होता रहता है। इसलिए हमें मन की शक्ति को अपने अधिकार से निष्क्रिय करना होगा, इंद्रियों के बहाव को रोकना होगा और बुद्धि को जाग्रत रखना होगा। भीतर की व्यवस्था संभली तो बाहर की व्यवस्था अपने आप ठीक हो जाएगी।

सार : जिस प्रकार हर व्यवस्था में सभी का अपना-अपना दायित्व होता है, उसी प्रकार हमारी भीतरी और बाहरी व्यवस्था भी काम करती है। ज़रूरत है उस व्यवस्था का शिकार बनने के बजाय उसका सदुपयोग करने की।

दुनिया उतनी ही बड़ी नहीं है जितनी आपको दिखाई देती है

जो लोग पेड़ का उपयोग कर रहे हों, या पेड़ पर बैठे हों उन्हें जो हिस्सा ऊपर दिख रहा है केवल उसी में रुचि नहीं होना चाहिए। जड़ों के बारे में पूरी जानकारी रखनी होगी। लोग जड़ों में जल तो डालते हैं, पर जड़ों से जुड़ नहीं पाते। चलिए, इस विचार को अपने कामकाज और कार्यस्थल से जोड़ कर चलें। व्यावसायिक क्षेत्र में प्रबंधन के गुरु हमें सिखाते हैं कि सतही काम न किया जाए। हर निर्णय और उसके क्रियान्वयन में एक गहराई होना चाहिए। उथले लोग बड़े अभियान कभी पूरे नहीं कर पाएंगे। इसलिए जीवन को भी उसकी जड़ से जोड़ा जाए। हमारे पारिवारिक जीवन में हमारी जड़ परिवार से गुज़र कर माता-पिता तक जाती है। हमारी जड़ें वे ही हैं। उनसे कट कर सफल से सफल आदमी भी सुख में शांति नहीं ला सकता। इसी तरह इस बाहरी जुड़ाव के अलावा हमारा स्वयं से एक आंतरिक मेलजोल भी होना चाहिए। जब भी हम खुद से जुड़ना चाहें अपनी नाभि पर अपने ध्यान को ठिकाने का अभ्यास बढ़ाएं। यह अपने ही भीतर की जड़ से जुड़ना होगा। जैसे ही हम स्वयं के केंद्र पर केंद्रित होते हैं, हमारे विचार स्पष्ट होने लगते हैं। हमारी वाणी प्रभावशाली हो जाती है और हमारा व्यवहार निष्कपट होने लगेगा। बिना जड़ों से जुड़े हुए लोग यदि अपने शारीरिक परिश्रम और बौद्धिक प्रयासों से सफलता के शीर्ष पर पहुंच जाते हैं तो लड़खड़ाने की संभावना बनी रहती है। अहंकार के झोंके, लगातार सफल बने रहने का तनाव और अज्ञात का भय हमें स्थिर नहीं रहने देता। कब शिखर से शून्य पर आ जाएं तय नहीं रहता। इसलिए जड़ों से जुड़ा रहना ज़रूरी है। अपने परिवार के लोगों से जुड़ने के दो फ़ायदे हैं। बड़े-बूढ़ों का आशीर्वाद और अन्य सदस्यों की सद्भावना एक सकारात्मक ऊर्जा द्वारा हमारे आसपास एक घेरा सा बना देते हैं। यह घेरा हमें भटकाव से रोकता है। हमारे और अपने लोगों के बीच एक सेतु बन जाता है, आवागमन सरल हो जाता है। तनाव के क्षणों में वे हमें राहत देने आ सकते हैं और हम उनकी छांव में शांति पाने जा सकते हैं। इसी तरह अपनी नाभि के केंद्र से जुड़कर हम और गहरे हो जाते हैं, जिसका सीधा असर हमारे आत्मविश्वास पर पड़ता है। यहीं से हम अपना और अपने साथियों का सही नेतृत्व करने लगते हैं।

सार : जो आँखों के सामने है, उससे परे भी सत्य का अस्तित्व होता है। जड़ों को मज़बूत रखा जाए तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा व्यवहार सकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं। इसका अर्थ है विवेक से काम लेना तथा भटकाव से बचना।

क्यों कहते हैं कि सभी शुद्धियों में धन की शुद्धि सर्वोपरि है

सारे व्यावसायिक प्रयास कुल मिलाकर धन के आसपास केंद्रित रहते हैं। यह धन कमाने का दौर है। जब इसका नशा चढ़ता है तो आदमी अच्छे और बुरे तरीके पर ध्यान नहीं देता। अपने व्यावसायिक जीवन में धन कमाने को तीन बातों से जोड़े रहिए- योग्यता, परिश्रम और ईमानदारी। ये त्रिगुण जिसके पास हैं वह किसी भी व्यावसायिक व्यवस्था में शेर की तरह होगा। शेर का सामान्य अर्थ लिया जाता है हिंसक पशु। लेकिन यहां शेर से अर्थ समझा जाए जिसके पास सबसे अलग हटकर, सबसे अनूठा होकर नेतृत्व की, यानी राजा बनने की क्षमता हो। एक पुरानी कहानी है। किसी कारण से एक शेर का बच्चा अपने माता-पिता से बिछड़कर भेड़ों के झुंड में शामिल हो गया। लंबे समय उनके साथ रहा। उसकी चाल-ढाल, रंग-ढंग सब बदल गए। संयोग से किसी शेर ने भेड़ों के उस काफिले पर हमला किया। भेड़ें भागी तो उन्हीं की तरह शेर का बच्चा भी भागा। उस हमलावार शेर को समझ में आ गया। उसने भेड़ों को छोड़ा और उस शेर के बच्चे को पकड़ा। पानी में चेहरा दिखाया और कहा- तू मेरे जैसा है। तू शेर है, सबसे अलग, सबसे ऊपर। हमारे साथ ऐसा ही होना चाहिए। हमारे त्रिगुण हमें आइना बताकर यह दिखाते हैं कि हमें योग्यता, परिश्रम और ईमानदारी से धन कमाना है। संस्थानों में अनेक लोगों की भीड़ होगी, पर हमें सबसे अलग रहना है। इस प्रकार जो धन हम कमा रहे हैं वह शुद्ध होगा और हमें अपनी सफलता के साथ शांति भी देगा। शास्त्रों में लिखा है- सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं पर स्मृतम्। योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥ सभी शुद्धियों में धन की शुद्धि सर्वोपरि है। वास्तव में वही शुद्ध है जो धन से शुद्ध है। जल और मिट्टी की शुद्धि कोई शुद्धि नहीं है। धन कमाने के मामले में हमारे ये त्रिगुण हमें बार-बार सामान्य लोगों की भीड़ से अलग, विशिष्ट बनाएंगे। अब जो समय है वह माचिस से आग जलाने का नहीं रहा। अब तो अपने व्यक्तित्व के तेज़ से प्रकाश फैलाने का वक्त है। किसी भी संस्थान में इन्सानों का ढेर होगा। उसमें यदि आप पूरे और सलामत दिखना चाहें तो लगातार अपने इन त्रिगुणों पर टिके रहिए। वर्जिश और रियाज की तरह रोज़ इनसे अपने एकांत में मुलाकात करिए और एकांत में खुद से मिलने के लिए योग और प्राणायाम को थोड़ा समय ज़रूर दीजिए।

सार : धनार्जन एक अत्यावश्यक क्रिया है। यदि आप ईमानदारी से मेहनत करके अपनी योग्यता को माँजते हुए धन कमाते हैं, तो इससे मिलने वाले आनंद से संतुष्ट रहेंगे और तेज़ी से सफलता के पायदान चढ़ते जाएँगे।

सुबह-शाम कुछ समय अपने आपको जानने में भी लगाएं

किसी व्यवस्था के शीर्ष पद पर या किसी संस्थान में ज़िम्मेदारी का कार्य करते हुए एक दायित्व बड़ी सावधानी से निभाना होता है, और वह है लोगों पर नज़र रखना। दो बातों पर दृष्टि रखी जाती है। पहली, लोग ग़लत काम न कर जाएं और दूसरी बात वे अच्छे काम भी करें। कई बार प्रमुख लोग अधिक ऊर्जा इस बात पर लगाते हैं कि लोगों की ग़लतियाँ पकड़ी जाएं। धीरे-धीरे ये आदत सी बन जाती है और ग़लती पकड़ने के बाद प्रताड़ना देना, दंड देना इसी में आनंद आने लगता है। लिहाज़ा कई बार तो ग़लती करने का मौका दिया जाता है और बाद में पोस्टमार्टम होता है, जबकि होना यह चाहिए कि ऑपरेशन कर दिया जाए ताकि पोस्टमार्टम की नौबत ही न आए। ग़लतियाँ ढूँढ़कर अपमानित करना लंबे समय तक चलता रहे तो कुल मिलाकर काम को नुकसान होता है और लोगों में सुधारने की संभावना समाप्त हो जाती है। अध्यात्म कहता है भूल किससे नहीं होती। भूल होते ही दंड देने के साथ ग़लती करने वाले के भीतर की योग्यता, अच्छाई को भी देखा जाए और उसे निखारा जाए। जितना आप किसी के भीतर के अच्छे पहलू को पकड़े, उतना ही वे अच्छा प्रदर्शन कर पाएंगे। रोक-टोक करते समय भीतरी अच्छाई को देखने वाली दृष्टि समाप्त न करें, इसके लिए दो प्रयोग करते रहें। आप किसी भी पद पर हों, जब अपने कार्यस्थल से घर आएँ तो अपने ऊपर वाले अधिकारियों से परेशान हों या अधिनस्थ लोगों से दुखी हों, दोनों ही स्थिति में यह भार आपको सोते और उठते समय बेचैन करेगा। शास्त्रों में लिखा है और सभी धर्मों ने मान्य किया है कि दो समय इंसान अपनी श्रेष्ठता को भीतर जाकर स्पर्श कर सकता है। प्रातः काल सूर्योदय के साथ उठें और नींद के बाद शरीर जिस विश्राम अवस्था में होता है उसी में बिस्तर पर बैठकर पूरी खामोशी के साथ औखें बंद करते हुए अपने भीतर उतर जाएँ। ये वो समय होता है जब आप पूरी तरह से रिलेक्स रहते हैं, प्रेम, आनंद और सहजता में रहते हैं। इस ताजगी के समय अपने आप से जुड़े रहिए। कोई चिंतन न करें बस उस अवस्था का रसपान करें, और ऐसे ही रात को सोते समय जब आप की भाव-दशा थकी हुई हो, दिनभर आप दुनिया से मेल-जोल करके लौटे हों, एक वैराग सा जागा हुआ हो, एक अजीब सी बेचैनी हो तो उस समय भी सोने से पहले अपने भीतर उतर जाएँ। बिक्कुल शांत मुद्रा में खुद से जुड़ जाएँ और नींद को आमंत्रण देते हुए उसके साथ जुड़े। इन दो अवस्थाओं में खुद से जुड़ने का मतलब है अपनी श्रेष्ठता को स्पर्श कर लेना। ये जुड़ाव आपके कामकाज में बड़ा काम आएगा।

सार : कार्यस्थल पर सहकर्मियों की त्रुटियाँ ही न देखें बल्कि उन्हें सुधार का मौका देकर तथा उनकी खूबियों को उभारकर, उन्हें प्रगति का मौका दें। सुबह-शाम शांत होकर अपने भीतर गोता लगाएँ और अपनी कार्यशैली का अवलोकन करें।

जीवन को यदि मस्ती से जीना है तो जीवन को बाँहों में भरना आना चाहिए। जो लोग जीवन का आलिंगन प्रेम, सौहार्द, करुणा और आभार से करेंगे, उनके लिए जीवन भी वही सब लौटाने को तैयार हो जाता है।

-पं. विजयशंकर मेहता

व्यक्तित्व तीन बातों से बनता है - शरीर, मन और आत्मा। जिस दिन व्यक्तित्व में इन तीनों का सही तालमेल हो जाएगा, तो उसे कहेंगे जीत का संयोग। यदि सफलता के साथ शांति चाहिए तो जीत के इस मेल को आध्यात्मिक भी बनाना होगा। जो लोग शरीर, मन और आत्मा के मिलन को समझ लेंगे, वे भीतर से ऋषियों की तरह होंगे और बाहर से श्रेष्ठ प्रबंधक। इसका यह अर्थ होगा कि हम शरीर से सक्रिय रहें, मन से विश्राम की मुद्रा में रहें और आत्मिक रूप से होश में रहें।

साथ ही, स्वयं के प्रति विश्वास रखें और अपने काम के प्रति आस्था। विश्वास हमारी बाहरी क्रियाओं को सक्रिय, चौकन्ना और थकान रहित बनाता है तथा आस्था हमें भीतर से अपने काम के प्रति समर्पित बना देती है।



MANJUL

www.manjulindia.com